।। ओ३म् तमसो मा ज्योतिर्गमय ।।

सत्यार्थप्रकाश सन्देश

सरल सत्यार्थप्रकाश

(LIGHT OF TRUTH & ITS MESSAGE)

डॉ. मुमुक्षु आर्य

अनुक्रम

क्रमांक	विषय	पृष्ठ
१.	भूमिका	३-५
२.	मुख्य सन्देश	६-७
३.	महत्वपूर्ण शब्दों का परिचय व अन्तर	८-२६
४.	महर्षि दयानन्दकृत भूमिका व अनुभूमिकाएं	२७-३४
५.	सत्यार्थप्रकाश में योग विद्या	३५-३६
६.	महर्षि दयानन्द के प्रेरक वाक्य	३७-४८
७.	मतमतान्तरों की असम्भव बातें	४९-६०
८.	सृष्टि उत्पत्ति व वेद उत्पत्ति	६१-७२
९.	मत-मतान्तरों की उत्पत्ति	७३-८४
१०.	ईश्वर का स्वरूप व उपकार	८५-९४
११.	पुनर्जन्म	९५-१०४
१२.	आस्तिक - नास्तिक कौन	१०५-११५
१३.	मनुष्य जन्म व उसका मुख्य लक्ष्य	११६-१२४
१४.	बाल शिक्षा	१२५-१३६
१५.	मूर्ति पूजा से हानियाँ	१३७-१४०
१६.	विवाह से पूर्व सावधनियाँ	१४१-१४४
१७.	बाईबल की कहानियाँ	१४५-१४८
१८.	सामान्य ज्ञान व इकावन मान्यताएँ	१४९-१५९
१९.	महर्षि दयानन्द की जीवन यात्रा व परिचय	१६०-१७६

सत्यार्थप्रकाश सन्देश

पुस्तक प्राप्ति स्थान

1. वेद संस्थान, जी-6, सैक्टर-12, नोएडा -201301
   दूरभाष - 0120-2553467, 9350206476

2. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, 3/5, आसफ अली रोड, महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-2 दूरभाष - 23274771

3. आर्य प्रकाशन - 814, कूण्डेवालान, अजमेरी गेट,
   दिल्ली - 110006 दूरभाष - 23233280

4. दर्शनयोग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, पोस्ट-सागरपुर,
   जिला-साबरकांठा, गुजरात - 383307, दूरभाष - 02770-287417

5. मधुर प्रकाशन, 2804, गली आर्य समाज, सीताराम बाजार,
   दिल्ली 110006 दूरभाष - 23238631

6. गोविन्दराम हासानन्द, 4408, नई सड़क,
   दिल्ली - 110006 दूरभाष - 22914945

7. अमर स्वामी प्रकाशन, 1058 विवेकानन्द नगर,
   गाजियाबाद 201001 दूरभाष : 0120-2701095

लैजर टाईप सैटिंग व कम्पोजिंग

वैदिक प्रकाशन, 1301, बाजार संगतराशान, पहाड़गंज, नई दिल्ली-55
दूरभाष : 55365312, 9212098559

मुद्रक : सम्राट प्रिंटर्स एण्ड बाइन्डर्स, फोन : 23274880, मो० : 9312547568

मूल्य : 40/- रूपये (चालीस रूपये)

thearyasamaj.org

ओ३म् तमसो मा ज्योतिर्गमय

भूमिका

महर्षि दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश एक अद्वितीय क्रांतिकारी ग्रन्थ है इसकी शिक्षाओं को सरल भाषा में जन जन तक पहुँचाने के लिए हमारा यह एक लघु सा प्रयास है। धर्म अर्थ काम व मोक्ष की प्राप्ति के लिए शुद्ध ज्ञान कर्म व उपासना आवश्यक है इन चारों की सिद्धि में यह ग्रन्थ अत्यन्त सहायक है । लगभग चार हजार से भी अधिक ग्रन्थों का मन्थन कर मानव मात्र के कल्याण के लिए महर्षि दयानन्द जी ने इस ग्रन्थ की रचना कर हम पर बड़ी कृपा की है। इस अमर कृत्ति को राष्ट्रीय पुस्तक घोषित कर स्कूल, कालेजों व विश्व विद्यालयों में लगाया जाए तो शीघ्र ही सब अन्धविश्वासों व पांखड़ों का समूल नाश हो विशुद्ध धर्म की स्थापना हो जाए । समस्त मानव जाति को एक सूत्र में पिरोने के लिए आवश्यक है कि इस ग्रन्थ की शिक्षाओं का प्रचार प्रसार हो । इस ग्रन्थ के स्वाध्याय ने अनेक लोगों को महापुरुष बनाया है । स्वामी श्रद्धानंद, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, श्याम जी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपत राय, लोकमान्य तिलक, वीर सांवरकर, पं. रामप्रसाद विस्मिल मुन्शी प्रेम चन्द, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, स्वामी सर्वदानंद जी, स्वामी सर्वानन्द जी, स्वामी दर्शनानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रता नंद जी, स्वामी दीक्षानंद जी, स्वामी सत्यपति जी आदि सैकड़ों नेताओं, महात्माओं, साधु, सन्यासियों का प्रेरणा स्रोत यही ग्रन्थ रहा है ।

युवावस्था में एक चिकित्सक के रूप में जब मैं एक अस्पताल में कार्यरत था तो एक वृद्ध व्यक्ति मुझे यह ग्रन्थ दे गए । कुछ पन्ने

पलट कर देखा तो प्रथम दृष्टि में मुझे यह ग्रन्थ बड़ा क्लिष्ट सा लगा और एक ओर रख दिया। कई दिनों के उपरान्त यह ग्रन्थ पुनः उठाया और सहसा ही खोला तो मेरे सामने प्रश्न था 'मूर्तिपूजा कहां से चली? उत्तर – जैनियों से चली, प्रश्न – जैनियों ने कहां से चलाई ? उत्तर – अपनी मूर्खता से चलाई .... इस सन्दर्भ को पूरा पढ़ गया और समय का ध्यान ही न रहा । मैं एक कट्टर पौराणिक परिवार से था और प्रतिदिन प्रातः सांय मूर्तियों की पूजा करता था । उस दिन सायंकाल मूर्तिपूजा में मन नहीं लगा । निर्णय किया कि इस संदर्भ को पुनः ध्यान से पढ़ा जाए और एक निर्णय पर पहुँचा जाए । पूरी रात इसका मनन निदिध्यासन करता रहा, अगले दिन प्रातः मैं एक नया व्यक्ति था । घर में पड़ी सब मूर्तियों को उठाकर कूड़े के ढेर पर फैंका, मूर्तिपूजा के खण्डन में एक लेख छपवा कर बांटा, नाम के साथ जाति सूचक चिन्ह हटाकर आर्य लगाना प्रारम्भ किया, स्कूल में जाकर बच्चों के नाम के साथ भी आर्य लगवाया, प्रतिदिन संध्या-हवन प्रारम्भ किया, अभक्ष्य पदार्थों का सेवन छोड़ा, विदेशी वेशभूषा भाषा का त्याग किया, अष्टाध्यायी व्याकरण सीखने के लिए अध्यापक रखा, वैदिक ग्रन्थों का स्वाध्याय प्रारम्भ किया, मतमतान्तरों का ट्रेक्टों के माध्यम से खण्डन मण्डन करने लगा । धीरे-धीरे चिकित्सा का पेशा उपेक्षित सा होने लगा । पचास वर्ष की आयु में सब झंझटों से छुटकारा पाकर पूज्य स्वामी सत्यपति जी से वानप्रस्थ की दीक्षा लेकर शेष जीवन साधना स्वाध्याय आदि में लगाने का संकल्प लिया ।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में मेरी विशेष रूचि रही है इस पर आधारित एक पुस्तक 'गागर में सागर' अत्यन्त लोकप्रिय हुई और कई नवयुवकों का जीवन उससे बदला । प्रत्येक सज्जन

thearyasamaj.org

पुरुष का, समाज का, सभा का, संस्था का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि इस ग्रन्थ की एवं इस पर आधारित अन्य ग्रन्थों की प्रतियां प्रतिमास अपने पड़ौसियों, मित्रों व बुद्धिजीवियों में सप्रेम भेंट करें । सत्यार्थप्रकाश चारों वेदों का सार और समग्र शान्ति एवं क्रान्ति का आधार है । सत्यार्थप्रकाश के संदेश को तथा उसकी मुख्य-मुख्य शिक्षाओं को अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । पाठकों की सुविधा व रोचकता के लिए हमने विषयक्रम रखने का प्रयास भी किया गया है । अन्त में महर्षि दयानन्द की संक्षिप्त जीवनयात्रा पर भी प्रकाश डाला गया है। स्वामी विवेकानन्द से अन्तर भी स्पष्ट किये गए हैं । आशा है पाठक इससे लाभान्वित होंगे और इसके प्रचार प्रसार में यथाशक्ति सहयोग करेंगें ।

उन समस्त महानुभावों एवं विद्वानों का मैं हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक को तैयार करने में आधार प्रदान किया है, सहयोग किया है एवं प्रेरणा दी है । ईश्वर करे सब मनुष्य पूर्वाग्रह व द्वेषभाव का त्याग कर सत्य का ग्रहण करें और असत्य का परित्याग करें ।

विनीत

मुमुक्षु आर्य

वेद संस्थान, जी-६ सैक्टर-१२ नोएडा-२०१३०१

दूरभाष -०१२०-२५५३४६७, ९३५०२०६४७६

thearyasamaj.org

सत्यार्थप्रकाश का मुख्य संदेश

ईश्वर, जीव, प्रकृति तीन वस्तुएं अनादि हैं तीनों के लक्षण पृथक-पृथक हैं, तीनों का परस्पर सम्बन्ध साध्य-साधक-साधन, व्याप्य-व्यापक, सर्वज्ञ-अल्पज्ञ-अज्ञ, निमित्त कारण-साधारण कारण-उपादान कारण हैं । तीनों की सिद्धि में तर्क व प्रमाण हैं :

१. **तर्क :—** संसार की छोटी से छोटी वस्तु के निर्माण के लिए तीन कारण आवश्यक हैं जैसे घड़े के लिए कुम्हार, समय -स्थान-ज्ञान, व मिट्टी । उसी प्रकार सूर्य, चाँद, तारों आदि के निर्माण के लिए तीन कारण आवश्यक हैं । ईश्वर = निमित कारण (Efficient Cause) जीव = साधारण कारण (Instrumental Cause) प्रकृति = उपादान कारण (Material Cause).

२. **प्रत्यक्ष प्रमाण :—** इन्द्रियों का विषयों के सम्पर्क में आने से जो ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष कहलाता है इन्द्रियों से गुणों का ग्रहण होने से वस्तु का प्रत्यक्ष होता है । प्रत्यक्ष शब्द का वास्तविक अर्थ है ज्ञान होना । केवल आखों से देखना नहीं होता, नाक, कान, त्वचा से भी प्रत्यक्ष होता है । इन्द्रियों द्वारा भौतिक पदार्थों का प्रत्यक्ष होता है । आत्मा द्वारा अभौतिक परमात्मा का ज्ञान होता है ।

३ **अनुमान प्रमाण :—** जैसे धुएं को देखकर अग्नि का अनुमान होता है वैसे ही सृष्टि की अद्‌भुत, बुद्धिपूर्वक, उद्देश्यपूर्वक रचना देखकर ईश्वर का ज्ञान होता है; सुख-दुःख-इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-ज्ञान आदि गुणों को देखकर जीवात्मा का प्रत्यक्ष होता है, वस्तु का रूपान्तरण होता है नाश नहीं होता, देख कर प्रकृति का ज्ञान होता है । [प्रकृति अर्थात् परमाणु (Primordial matter)], जीने के लिए

हवा, पानी, रोशनी व खुराक का प्रबन्धक कौन है, किसके लिए करता है, कैसे करता है ? सृष्टि की उत्पति-स्थिति-प्रलय; अच्छे बुरे कर्मों का फल; वेदों का ज्ञान कौन देता है ?

४. **शब्द प्रमाण :—** इनकी सिद्धि में ऋग्वेद १-१६४.२० द्वासुपर्णा...; हिरणयगर्भ समवर्तताग्रे.......ऋ० १०-१२१.१; अधमर्षण मंत्र ऋ० १०.१९०.१,२,३; यजु. ईशावास्य इदम् सर्वम् ....४०.१ शाश्वतीभ्यसमाभ्य ४०.८, ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्......... ऋ० १. १६४.३९, प्रमाण हैं । जीवात्मा की सिद्धि में यजु ४०.१४ - ओ३म् क्रतो स्मर व दर्शनों के अनेक प्रमाण हैं । सांख्य के अनुसार षष्ठी विभक्ति का प्रयोग कौन करता है अर्थात् मेरा मेरा कौन करता है ? वैशेषिक दर्शन के अनुसार मैं पन की अनुभूति कौन करता है ? न्याय दर्शन के अनुसार इन्द्रियाँ तो एक-एक ही विषय को जान सकती हैं सब को जनाने वाला कौन है ? देखा आंख ने लार मुंह में आई-उन दोनों को जोड़ने वाला कौन है ? बचपन से अत्यन्त मेधावी बच्चे कैसे होते हैं ? पूर्वजन्म स्मरण रहने की घटनाएं कैसे होती हैं ? सांख्य दर्शन १.६१ सूत्र में सत्व, रज, तम प्रकृति की साम्यावस्था से सब पदार्थों की उत्पति मानी है । विज्ञान ने भी माना है कि किसी भी पदार्थ को किसी भी भौतिक या रासायनिक क्रिया के द्वारा न तो बनाया जा सकता है न नष्ट किया जा सकता है ।

हम जीवात्माएं साधक हैं हमें सब साधनों का अनासक्त भाव से ठीक-ठीक प्रयोग करते हुए अपने चरम/लक्ष्य साध्य ईश्वर को प्राप्त करना है । विश्व के सब मानव इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लें तो यह पृथ्वी स्वर्ग हो जाए ।

कुछ महत्वपूर्ण शब्दों का परिचय व उनमें अन्तर

(क) धर्म अधर्म

उत्तर- कोषकारों ने धर्म, पुण्य, न्याय, और सदाचार को पर्याय माना है और पाप, अन्याय और दुराचार को अधर्म का पर्याय वाची कहा है ।

महर्षि ने अति संक्षिप्त परन्तु सर्वमान्य ढंग से धर्म को परिभाषित किया है' उन के अनुसार, वेदों (श्रुति) द्वारा प्रतिपादित, स्मृतियों द्वारा निर्देशित, सत्पुरुषों द्वारा आचार में लाए हुए कर्म और अपने आत्मा को प्रिय (जैसे सत्य भाषण आदि) यह चार धर्म के मूल स्रोत हैं और इन्हीं से धर्म-अधर्म का निश्चय होता है ।

महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश में आत्मा को प्रिय (धर्म युक्तों) वे कर्म कहे हैं कि जिन के करने से अत्मा आनन्द, उत्कर्ष, तेज, वृद्धि और निर्भयता का अनुभव करे और जिन कर्मों के करने से भय, शङ्का, लज्जा आदि निकृष्ट भाव उत्पन्न हों वे अधर्म युक्त कर्म कहे हैं ।

धर्म के लक्षण	अधर्म के लक्षण
१. धृति, २. क्षमा, ३. दम, ४. अस्तेय, ५. शौच, ६. इन्द्रिय-निग्रह, ७. धी, ८. विद्या, ९. सत्य १०.अक्रोध महर्षि मनु के अनुसार धर्म के ये दस लक्षण हैं ।	१. स्पृहा, २. नास्तिकता, ३. कठोर-वाणी, ४.निन्दा, ५. लोभ ६. मोह, ७. अहंकार, ८. दूसरों का मर्म आहत करने में आनन्दानु-भूति ९. पर स्त्री या पर पुरुष से सम्बन्ध रखना १०. क्रोध ११. मिथ्या भाषण।

thearyasamaj.org

(ख) स्पृहा-अस्पृहा

उत्तर स्पृहा - शब्दार्थः — वांछा, इच्छा, कामना, किसी वस्तु से वृत्ति द्वारा जुड़ना ।

अस्पृहा — शब्दार्थः- उदासीनता, अनासक्ति, वैराग्य,

श्री कृष्ण ने गीता के चौथे अध्याय के चौदहवें श्लोक में कहा है—

"न माम् कर्माणि लिम्पन्ति न में कर्म फले स्पृहा ।"

अर्थात हे अर्जुन ! न मैं कर्मों में लिप्त होता हूँ और न ही मुझे कर्मफल की कोई स्पृहा (इच्छा, कामना) रहती है ।

यह अस्पृहा की अवस्था है जो मनुष्य को कर्मों और कर्म के बन्धनों से मुक्त करती है! यही जीवन-मुक्त होने का साधन है!

इस प्रकार 'अस्तेय' की व्याख्या में कहा गया है, "पर धन या पराई वस्तु में स्पृहा न होना ! उस के लिये न मन में इच्छा जागृत होना और न अन्याय से उसे ग्रहण करना अस्तेय है ।"

स्पृहा बड़ी सूक्ष्म वृत्ति है! किसी वस्तु के विचार में ही आने पर या देखने पर अपनी मनोवृति द्वारा उस के साथ आसक्त हो जाना ही स्पृहा है । और ऐसे बन्धन से मुक्त रहना अस्पृहा है! महाराजा जनक अस्पृहा का एक उज्जवल उदाहरण हैं! उन्हें संसार की किसी वस्तु से यहां तक कि अपनी देह से भी स्पृहा नहीं थी ! इसी से वे जीवन मुक्त या विदेह-राजा कहलाये ।

(ग) विद्या-अविद्या

उत्तर-वैशेषिक दर्शन के अनुसार जो अदुष्ट अर्थात् सत्य अथवा यथार्थ ज्ञान है उसे विद्या कहते है और जो दुष्ट अर्थात विपरीत ज्ञान है उस को अविद्या कहते हैं ।

महर्षि अनुसार, "जिससे पदार्थों का यथार्थ स्वरूप बोध होवे वह विद्या और जिस से तत्व का स्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य का बोध होवे, वह अविद्या है ।"

विद्या विवेक की जननी है और मनुष्य के चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करने वाली पारस मणि है । विद्या-अविद्या का अन्तर निम्न प्रकार से है ।

१. विद्या ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन है। यह विवेक एवं वैराग्य जागृत कर मोक्ष प्राप्त कराती है ।	१. जो ज्ञान को गौण और कर्म, उपासना को प्रधानता दे वह अविद्या है । यह संसाधनों को जुटाकर सांसारिक कष्टों से तर जाने का साधन है ।
२. विद्या देह और आत्मा के भेद को यथार्थ रूप से समझा कर हर प्रकार का भ्रम दूर करती है ।	२. अविद्या के आवरण में व्यक्ति आत्मा की तुलना में शरीर को अधिक महत्त्व देता है और शरीर को नित्य मान कर उसी से मोह में घिरा रहता है ।
३. विद्या व्यक्ति के सत्य-असत्य, नित्य-अनित्य, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, पवित्र - अपवित्र के सूक्ष्म अन्तर को समझने की योग्यता देती है ।	३. अविद्या से व्यक्ति शंका मुक्त नहीं हो पाता और अपवित्र में पवित्र, अनित्य में नित्य और असत्य में सत्य का भान उसे सदा रहता है ।
४. विद्या से सत्व गुण का उदय होता है जो मनुष्य को सत्कर्म करने के लिये प्रेरित करता है। और उस को उत्कर्ष की ओर ले जाता है।	४. अविद्या से तमोगुण जागृत होता है जिस से अस्मिता, अहंकार, मोह आदि निकृष्ट वृत्तियां घेर लेती हैं । व्यक्ति दुःख रूप बन्धनों से नहीं छूट पाता ।

(घ) आकांक्षा - योग्यता, आसत्ति, तात्पर्य :-

१. **आकांक्षा :-** महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ की भूमिका में वाक्यार्थबोध के सम्बन्ध में इन शब्दों का प्रयोग किया है । आकांक्षा का मुख्य अर्थ है कि संज्ञावाची (Noun) शब्दों को क्रियावाची (Verbs) शब्दों की अपेक्षा या आवश्यकता होती है और क्रियावाची शब्दों को संज्ञावाची शब्दों की अपेक्षा होती है तभी अर्थ स्पष्ट हो पाता होता है । राम जाता है से अर्थ स्पष्ट हो जाता है ।

आकांक्षा को परिभाषित करते हुए इन्होंने लिखा कि किसी विषय पर वक्ता या लेखक की और वाक्यस्थ पदों की आकांक्षा परस्पर होती है अर्थात लेखक के मनोभाव और उस के लेख के पदों के भाव अलग-अलग नहीं हो सकते। वक्ता या लेखक का व्यक्तित्व उस के प्रवचन या लेख में स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

व्यक्ति भले ही न रहे पर वह अपने साहित्य में जीवित रहता है । ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विषय में हमारा ज्ञान वेदों पर आधारित है । महर्षि दयानन्द की मानव धर्म के लिये सत्य चेष्ठा आज सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन से ही हमें बोध होती है । अतः लेखक और उस के लेख की आकांक्षा को अलग-अलग कर के नहीं देखना चाहिए ।

२. **योग्यता :-** जो क्रिया वाक्य में बताई जा रही है क्या वह क्रिया सम्भव है ? उसमें क्रिया करने की योग्यता है ? जैसे किसान अग्नि से खेत को सींचता है, हनुमान ने सूर्य को मुँह में डाला, सर्वव्यापक ईश्वर ने गर्भ धारण किया आदि क्रियाऐं असम्भव हैं ।

३. **आसत्ति :-** जिस विषय अथवा लेख के साथ जिस का जितना अधिक भावात्मक सम्बन्ध होता है उतना ही अधिक वह विषय उस को ग्राह्य होता है । अतः वह लेख या पद उसी के समीप बोलना अथवा समझना चाहिए ।

thearyasamaj.org

जैसे वाक्य पदों की और लेखक की आत्मा एक होती है वैसे ही यदि श्रोता या पाठक की भी भावात्मक निकटता उस विषय के साथ हो तो वह उस के लिये रुचिकर होता है और उस के लिए उस लेख के वाक्यपदों के अर्थ समझना सहज हो जाता है । विपरीत अवस्था में वह उसके लिए ऐसे होगा जैसा कि भैंस के आगे बीन बजाना ।

अतः वाक्यार्थ बोध के लिए आसति एक महत्व पूर्ण तत्व है । वैराग्य और विवेक की बातें विषयी को समझाना निरर्थक है, जब कि योगी के लिये यह विषय रुचिकर और सहज ग्राह्य है । वाक्य में जो शब्द, अर्धविराम, विराम आदि चिन्ह जहां लगने चाहिएं वही लगे हों अन्यथा अर्थ बदल जाएगा । जैसे जहां पर देशी घी मिलता है को जहाँ परदेशी घी मिलता है लिखने बोलने से अर्थ बदल जाता है ।

४. **तात्पर्य** :- वक्ता या लेखक के अभिप्राय को समझना चाहिए । उसकी मान्यताओं के विरुद्ध अर्थ नहीं लगाना चाहिए । जैसे सब पदार्थों का आदि मूल ईश्वर है, का अर्थ यह नहीं कि ईश्वर जीवात्माओं और सत्व, रज, तम, प्रकृति का भी आदि मूल है । महतत्व से लेकर सूर्य चांद तारों तक का आदि मूल ईश्वर है ।

स्वेदज जीव - उद्भिज जीव

ड) **स्वेदज जीव :—** डंक से काटने वाले मच्छर आदि, जूँ,मक्खियां, खटमल और भी इस प्रकार के जीव हैं जो ऊष्मा अर्थात् सीलन और गर्मी से पैदा होते हैं वे सब स्वेदज अर्थात पसीने से पैदा होने वाले कहलाते हैं ।

thearyasamaj.org

यहां स्वेद का अर्थ केवल शरीर से निकलने वाला पसीना न हो कर कुछ व्यापक है । इससे जलवायु से होने वाली धरती, लकड़ी-पत्थर की सीलन भी स्वेद के अर्थ में आती है । इस सीलन और ताप से उपरोक्त जीवों के अतिरिक्त भी बहुत से लघु जीव पैदा होते हैं ।

उद्भिज जीव :— बीज और शाखा (कलम) से उत्पन्न होने वाले सब स्थावर जीव (वृक्ष आदि) उद्भिज (भूमि को फाड़ कर उगने वाले) कहाते हैं । इनमें फलादि आने पर पक कर सूख जाने वाले यथा चावल, तिल, गेहूँ, मक्का आदि या जिन पर बहुत फूल-फल लगते हैं वे औषधि कहलाते हैं । जिन पर बिना फूल आये ही फल लगते हैं वे वनस्पतियां कहलाते हैं । और यदि फूल आने के पश्चात् फल लगें तो वे वृक्ष कहलाते हैं ।

(च) विवाह - नियोग

विवाहः— जब से मानव समाज व्यवस्थित हुआ है तब से ही विवाह का शास्त्र सम्मत् विधान है। इस विद्या में स्त्री-पुरुष पूर्ण ब्रह्मचर्य के पश्चात् जीवन की सुख-सुविधा और गृहस्थ के कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये दम्पति के रूप में रहने हेतु प्रणय सूत्र में बन्धते हैं । संतानोत्पत्ति और संतान के पालन-पोषण के साथ वृद्धों की सम्भाल और अतिथि सत्कार गृहस्थ जीवन के मुख्य कर्त्तव्य हैं। इस के लिये स्त्री-पुरुष का सहयोग अनिवार्य है ।

मनुस्मृति में इसे पाणिग्रहण संस्कार कहा है इस का अभिप्राय भी उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये एक दूसरे का हाथ थामना अर्थात् सहयोग देना । विवाह दोनों की इच्छा और सहमति से हो । तुल्य व्यक्तित्व वालों का विवाह योग्य है । महर्षि अनुसार पुरुष

thearyasamaj.org

२५-४८ वर्ष के बीच और कन्या १६-२४ वर्ष के बीच होनी चाहिये। दोनों निरोग होने चाहिएं ।

नियोग :— नियोग-विशेष परिस्थितियों में किसी पुरुष का पर स्त्री से और स्त्री का पर पुरुष से समागम नियोग कहलाता है । वेदों और मनुस्मृति में इसे धर्म सम्मत माना है । विशेष परिस्थितियां निम्नलिखित हैं (सत्यार्थप्रकाश अनुसार)

१. यदि पति की असमय मुत्यु हो जाये तो केवल संतान प्राप्ति के लिये स्त्री को पर-पुरुष से सम्भोग की अनुमति देना। यदि पुरुष का ही देवर या जेठ हो तो अधिक अनुकूल है ।

२. यदि पुरुष जीवित है पर सन्तानोत्पत्ति के योग्य नहीं या रोगी है और रोग असाध्य है ।

३. ऐसे ही यदि स्त्री बन्ध्या हो और आठ वर्ष तक उस के गर्भ नहीं ठहरता तो पुरुष नियोग से सन्तान प्राप्त करें। यदि पुरुष आठ वर्ष तक भी विदेश से न लोटे तो स्त्री भी पर-पुरुष से सन्तान प्राप्त करले यह मनुस्मृति का विधान है ।

चेतावनी :— नियोग की अनुमति केवल संतान प्राप्ति के लिये है न कि भोग विलास के लिये, सन्तान प्राप्ति के पश्चात् पर पुरुष या पर स्त्री से सम्बन्ध भंग हो जाने चाहियें । यह केवल एक अस्थाई अनुबन्ध है इस में आसक्ति नहीं बनानी चाहिए ।

छ सूक्ष्म शरीर - कारण शरीर

सूक्ष्म शरीर :— अति सूक्ष्म तत्वों से बने शरीर को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इसके सत्रह अवयव हैं। पाँच सूक्ष्म भूत (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श व शब्द), पाँच ज्ञानेन्द्रियां (श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा,

और नासिका), पाँच प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान), मन और बुद्धि । यह सूक्ष्म शरीर मृत्यु के पश्चात् भी जीव के साथ रहता है। इसके दो भेद हैं —

१. **भौतिक** — अर्थात जो सूक्ष्म भूतों के अंशों से बना है ।

२. **अभौतिक या स्वाभाविक** — इस में कोई भौतिक अंश नहीं होते, केवल जीव के स्वाभाविक गुण रूप होते हैं । यह मुक्ति में भी जीव के साथ रहता और मुक्ति सुख को केवल संकल्प से भोगता है।

कारण शरीर :— गाढ़ निद्रा या सुषुप्ति अवस्था में जब जीव शरीर के बन्धन से मुक्त आनन्द की अवस्था भोगता है, उस समय यह शरीर अति सूक्ष्म अस्थाई प्रकृति रूप हो कर सर्वव्यापक या विभु हो जाता है । यह सब जीवों के लिये एक सा है ।

कारण शरीर में जीव को अपने कारण रूप (निमित्त एवं उपादान) ईश्वर के आनन्द रूप और प्रकृति के सूक्ष्म रूप का अनुभव अस्थाई रूप से प्राप्त होता है —

ज प्रलय काल-परान्त काल

प्रलयकालः— सृष्टि अनादि नहीं है । उसकी उत्पत्ति सर्वशक्तिमान परमेश्वर (निमित्त कारण) द्वारा प्रकृति (उपादान कारण) के सूक्ष्म और अदृश्य कणों द्वारा संयोग से होती है । जब इस की उत्पत्ति होती है तो विनाश होना भी निश्चित है । वेदानुसार सृष्टि की उत्पत्ति से प्रलय तक का काल एक ब्रह्म दिन के समान है और प्रलय से पुनः सृजन के बीच का काल ब्रह्म की रात्रि है । इसका गणित इस प्रकार है :-

एक चतुर्युगी = ४३,२०,००० वर्ष
१००० " = ४,३२,००,००,००० (ब्रह्मा का दिन अथवा रात)

thearyasamaj.org

अतः प्रलय काल चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का होता है।

परान्त काल :— वेद मत के अनुसार सान्त कर्मों का अनन्त फल नहीं हो सकता अतः चाहे कितने भी पुण्य कर्म किये हों उन का फल कभी तो क्षीण होगा ही । अतः मुक्ति अनन्त काल के लिये नहीं हो सकती । मुक्ति काल अथवा परान्त काल की अवधि निश्चित रूप से दीर्घ है पर अनन्त नहीं । इसका गणित इस प्रकार है :—

एक चतुर्युगी	४३,२०,००० वर्ष
ब्रह्म का दिन/रात्रि	४,३२,००,००,००० वर्ष
सृष्टि काल+प्रलय काल (अहोरात्रि)	८,६४,००,००,००० वर्ष
तीस अहोरात्र (एक मास)	२५,९२,००,००,०००
१२ मास (एक वर्ष)	३१,१,०४,००,००,०००
परान्त काल (शत वर्ष)	३१,१०,४०,००,००,००,०००

इक्कतीस नील दस खरब एवं चालीस अरब वर्षों का परान्त काल।

झ आदि - अनादि

आदि :— जिन पदार्थों की उत्पत्ति-विनाश अथवा जन्म-मरण क्रम से होता रहता है, वे आदि पदार्थ कहलाते हैं । ऐसे पदार्थ सूक्ष्म मूल तत्वों के संयोग से निर्मित होते हैं और उन्हीं तत्वों के विभाग से वे विनष्ट हो जाते हैं । आदि पदार्थों का उत्कृष्ट उदाहरण यह जगत् है जिस को निमित्त कारण परमेश्वर ने उपादान कारण प्रकृति के सूक्ष्म कणों से रचा है। जगत् के पदार्थों का अवस्थान्तर हम अनुभव कर सकते हैं और अन्त में महा अवस्थान्तर से यह जगत छिन्न-भिन्न हो कर मूल कारण प्रकृति के सूक्ष्म कणों में परिवर्तित हो जाता है ।

thearyasamaj.org

अनादिः— अनादि पदार्थ अजर-अमर भी कहलाते हैं क्यों कि न तो इन का जन्म होता है और न ही विनाश या मरण होता हैं। ये पदार्थ अपने विशिष्ट गुण, कर्म और स्वभाव सदैव अपने मूल रूप में बनाए रखते हैं अर्थात् ये अविनाशी पदार्थ हैं ।

परमेश्वर, जीव और प्रकृति तीनों अज, अर्थात इन का जन्म कभी नहीं होता और न कभी ये विनाश को प्राप्त होते हैं । अनादि पदार्थ कारण रूप होते हैं, कार्य रूप नहीं होते । ये तीनों जगत के कारण हैं । इन का कारण कोई नहीं । ईश्वर सत+चित्त+आनंद, जीव = सत+चित्त प्रकृति = सत् । ईश्वर सर्वज्ञ, जीव अल्पज्ञ, प्रकृति अज्ञ है । तीनों का व्याप्य-व्यापक, निमित्त कारण-उपादान कारण - साधारण कारण, साध्य साधक-साधन संम्बन्ध हैं ।

ञ परिच्छिन - विभु

परिच्छिन :— शब्दकोष अनुसार परिच्छिन का अर्थ है मर्यादित, सीमायुक्त, परिमित 'एक देशीय' ।

जो पदार्थ स्थान, काल या परिस्थितियों के बन्धन में हो और उन का अतिक्रमण करने का सामर्थ्य न रखता हो उसे परिच्छिन कहते हैं जीवात्मा केवल अपने शरीर से संयुक्त है और इसी शरीर के कार्य - व्यवहार से सम्बन्ध रख सकती है । चाहकर भी किसी अन्य शरीर को नियन्त्रित नहीं कर सकती । केवल वर्तमान शरीर छूटने पर ही किसी अन्य शरीर को धारण कर सकती हैं इसी लिये जीवात्मा को परिच्छिन मानते हैं । ये एक देशीय होते हैं ।

परिच्छिन पदार्थों की व्यापकता, उनकी शक्ति, उन का ज्ञान सीमित होते हैं ।

विभु :— शब्दकोष अनुसार विभु का अर्थ है सर्वव्यापक, ईश्वर, स्वामी ।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी कोई पदार्थ परिमाण में जितना सूक्ष्म होगा उतनी ही उस की व्यापकता या फैलाव अधिक होगा ठोस, तरल, और गैस में गैसें सूक्ष्म पदार्थ होने के कारण अधिक व्यापक होने का गुण रखती है । बर्फ से अधिक जल अन्य पदार्थों में समा जाता हे और जल से कहीं अधिक भाप की व्यापकता है ।

सब भौतिक तत्वों से आत्मा सूक्ष्म है औरआत्मा से परम सूक्ष्म परमात्मा है । इसलिये परमात्मा की व्यापकता असीम है ।सब जीवों अथवा निर्जीवों में वह परमसूक्ष्म तत्व (परमात्मा) व्याप्त है इसी लिये परमात्मा को विभु कहा है ।

पदार्थ ज्यों-ज्यों सूक्ष्म अवस्था में अवस्थान्तरित होता है त्यों त्यों उस की शक्ति बढ़ती है। जल से भाप, घी से धूम अधिक बलशाली है । परम सूक्ष्म परमेश्वर सर्वशक्तिमान है ।

अन्य पदार्थों में व्याप्त होने से उन के अन्तर के गुण, स्वभाव भी सुगमता से पता चल जाते हैं इसी कारण परमात्मा सर्वान्तरयामी है

सब में होने के कारण सब को धारण करने का सामर्थ्य भी ईश्वर में है । इन्हीं कारणों से परमेश्वर को विभु भी कहते हैं ।

ट द्वैत-अद्वैत

द्वैतवाद :— द्वैतमत प्राचीनतम विचारधारा है । वेदमन्त्रों में भी द्वैतमत का स्पष्ट प्रतिपादन है । इस मत के मूल सिद्धान्त से सभी सहमत हैं कि किसी भी पदार्थ को बनाने के लिये कम से कम दो कारण अनिवार्य हैं । एक मूल तत्व (उपादान कारण) जिनके अवस्थान्तरण से कार्य रूप पदार्थ बनना है और दूसरा अवस्थान्तरण

कर के नया पदार्थ निर्मित करने वाला। (निमित्त कारण)। एक तीसरा कारण समय, स्थान, यन्त्र आदि साधारण कारण है। यदि यह मान लें कि परमेश्वर संकल्प से ही रचना करने में समर्थ है तो साधारण कारण का उपयोग नहीं रहता । अतः शास्त्रों ने निमित्त कारण परमेश्वर और उपादान कारण (प्रकृति) इन दोनों के कारण रूप से सृष्टि की उत्पत्ति को माना है । दोनों की अनिवार्यता निःसन्देह है। अतः द्वैतमत विवेक एवं तर्क संगत है । कुछ विद्वान तीसरे अनादि तत्व जीव की सत्ता को मानते हुए त्रैतवाद का अनुमोदन करते हैं । उन के अनुसार जीव भी स्वतन्त्र रूप से सृष्टि में पदार्थों के अवस्थान्तरण द्वारा नवीन रचना करता है अतः जीव की अलग सत्ता मानी जानी चाहिए और फिर जीव (आत्मा) अनादि है, न यह ईश्वर रचित है और न प्रकृति के तत्वों से बनी है ।

द्वैतमत वाले आत्मा को परमात्मा का ही अंश रूप मानते हैं और शरीर को प्रकृति तत्वों द्वारा निर्मित। उन के अनुसार परमेश्वर और प्रकृति ही दो स्वतन्त्र सत्ताएं हैं ।

अद्वैतवाद :— इस मत के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति और जगत् के नियन्ता, धारण, पोषण कर्ता के रूप में केवल एक ही सत्ता है अन्य नहीं । इन के अनुसार परमेश्वर जो निगुर्ण, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सृष्टि का कर्ता, धर्ता और संहारकर्ता है इसी ने अपने संकल्प से सभी पदार्थों को उत्पन्न भी किया है और उन से जगत की रचना भी की है। उन के अनुसार सभी स्थूल और सूक्ष्म दिखने वाले भौतिक तत्वों की वास्तविकता स्वप्नवत् है। यह परमेश्वर की माया के आवरण के कारण हमें केवल भासते हैं और प्रलय के पश्चात उसी हिरण्यगर्भ परमेश्वर में लीन हो जायेंगे। इस मत की पुष्टि के लिये वे मकड़ी द्वारा उत्पन्न तन्तु का उदाहरण देते

thearyasamaj.org

हैं। ऐसे ही उन अनुसार परमेश्वर पदार्थों को रचता है। प्रकृतितत्वों की कोई सत्ता नहीं हैं। पदार्थों में अन्य में अन्य का आभास होने के लिये वे रज्जू और सर्प का उदाहरण देते हैं।

इस मत के बीज उपनिषदों में थे पर इसे विकसित एवं प्रचारित गौड़पाड और शंकराचार्य जैसे विद्वानों ने किया। कुछ गलत ढंग से किया। तीन अनादि सत्ताओं के वेद में अनेक प्रमाण हैं।

ठ विवेक-वैराग्य

विवेक :— आत्मा का स्वरूप नित्य है परन्तु शरीर और दृश्यमान जगत सब अनित्य है। अविद्या और विषयासक्ति के कारण यह उलट प्रतीत होते हैं। इस भ्रम को हटा कर यथार्थ समझने वाली सूक्ष्म बुद्धि ही विवेक कहलाती है। तत्व ज्ञान होने या सर्वात्मा का साक्षात्कार होने को ही विवेक का उदय होना मानते हैं। जब अविद्या का आवरण हटता हैं तो विवेक जागृत होता है।

विवेक आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय, विद्वानों के सत्संग और विषयों से विरक्ति होने पर ही उपजता है।

विवेकी व्यक्ति ही समझ सकता है कि विषय-सुख जो अमृत समान मीठा लगता है वास्तव में मीठा विष है जिसकी परिणति दुःख रूप में होती है। वैराग्य और विवेक एक दूसरे के पूरक हैं और इन्हीं से मनुष्य जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि सम्भव है। विवेक वास्तव में सूक्ष्म भेद बुद्धि है और इसी से मनुष्य हंस की भांति दूध और जल के मिश्रण में से दूध अलग कर सकता है।

वैराग्य :— वैराग्य का भावार्थ राग-शून्य अर्थात् आसक्ति रहित होना है। राग-द्वेष, आसक्ति-विरक्ति मन की वृत्तियां हैं इस लिये वैराग्य या वीत-राग का सम्बन्ध भी इन्हीं वृत्तियों से है।

thearyasamaj.org

वैराग्य मुख्यता दो प्रकार से उत्पन्न होता है। एक है परिस्थिति जन्य वैराग्य और दूसरा विवेक जन्य वैराग्य। परिस्थिति जन्य वैराग्य एक अस्थाई अवस्था है किसी प्रियजन की मृत्यु पर या धन-सम्पत्ति के नष्ट होने की वेदना के कारण मनुष्य संसार को दुःखाल्य समझ कर विरक्ति में ही शान्ति ढूंढ़ता है । यह वास्तव में वैराग्य नहीं एक दुर्बल मन का परिस्थितियों से पलायण है ।

ऐसा व्यक्ति वैराग्य में भी परिस्थितियां बदलने की प्रतीक्षा में रहता है और समय अनुकूल होने पर फिर से मोह-माया और राग द्वेष में दुगने वेग से फंस जाता है ।

विवेक जन्य वैराग्य, संसार की नश्वरता और इन्द्रिय द्वारा भोगे विषय सुखों की दुःखों में परिणति भली प्रकार समझ कर राग-द्वेष से विरक्ति का नाम है । वैरागी किसी प्रकार के प्रलोभन या मोह-ममता से अपना सुपथ नहीं छोड़ता। यह वैराग्य ही ध्यान साधन द्वारा कार्य काल अवस्था तक ले जाता है जहां परमात्मा से साक्षात्कार सम्भव है। इसी से मनुष्य जन्म का परम लक्ष्य प्राप्त होता है ।

ड   स्वामी दयानन्द - स्वामी विवेकानन्द

दोनों महापुरुषों की परिस्थितियां लगभग तुल्य थी। तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार किया जा सकता है :-

स्वामी दयानन्द	स्वामी विवेकानन्द
◈ **जन्म का नाम :** मूल शङ्कर	◈ **जन्म का नाम :** नरेन्द्र नाथ,
◈ **जन्म :** १२.२.१८२४	◈ **जन्म :** ९.१.१८६२

◈ **जन्म स्थान :** टंकारा (गुजरात)
◈ **परिवार :** सम्पन्न
◈ **गृहत्याग :** २२ वर्ष की आयु में
◈ **विवाह स्थिति :** बाल ब्रह्मचारी
◈ **गुरु :** स्वामी विरजानन्द जी

◈ **तप :** गुरु चरणों में आने से पूर्व १२ वर्ष नदियों के तटों पर, बर्फीले पहाड़ों और घने जंगलों में तप करते रहे, साधु मंडलियों के साथ घूमते रहे और विभिन्न सम्प्रदायों का पाखण्डपूर्ण जीवन देखते रहे।
◈ **जीवन लक्ष्य :** ब्रह्मचारी सन्यासी बन कर विधवा विवाह, बौद्धमत, ईसामत, मुस्लिममत सम्बन्धी विचार बिल्कुल स्पष्ट, वेदों व व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान, आर्य समाज और विश्व समाज को पाखण्ड और भ्रम जनित कुरीतियों से मुक्त करा कर वेदमार्ग पर चलाना। सभी

◈ **जन्म स्थान :** कलकत्ता
◈ **परिवार :** सम्पन्न
◈ **गृहत्याग :** २१ वर्ष की आयु में
◈ **विवाह स्थिति :** बाल ब्रह्मचारी
◈ **गुरु :** राम कृष्ण परमहंस
◈ **तप :** गुरु से दीक्षा लेने के पश्चात ९ वर्ष तक हिमालय पर्वत में नदियों, वनों व बर्फीली चोटियों पर तप करते रहे और विद्वान विरक्त साधुओं का सत्संग प्राप्त करते रहे ।
◈ **जीवन लक्ष्य :** ब्रह्मचारी सन्यासी बन कर हिन्दु समाज में आ रही हीन भावना को दूर करना और वेदान्त ही सर्वोत्तम धर्म है यह प्रमाणित कर के हिन्दुओं में आत्म सम्मान और गौरव की भावना जागृत करना, विश्व धर्म सम्मेलन में वेद और वेदान्त

thearyasamaj.org

मतों और धर्मों के विरोध हटा कर सामंजस्य स्थापित करना। लक्ष्य प्राप्त के लिए सत्य मार्ग को किसी प्रलोभन या राग द्वेष के कारण नहीं त्यागना, मण्डन और खण्डन दोनों विधाओं से सत्य का प्रकाश किया ।

◈ **मृत्यु** : वेदों के आधार पर अमूल्य ग्रन्थों की रचना की कार्य काल-१८६३-१८७५ (१२ वर्ष) उग्र प्रचार से जहां असंख्य अनुयायी बने वहां कुछ शत्रु भी बन गये और वैर भाव से अवसर देख कर स्वामी जी को विष पान करा दिया जिस से वे केवल ५९ वर्ष की आयु में प्राण त्याग कर मोक्ष को प्राप्त हुए । जीवन काल-१८२४-१८८३ (५९ वर्ष)

की श्रेष्ठता का डंका बजाया, प्रबुद्ध सन्यासी ने सकारात्मक प्रचार से शिक्षित समाज की सोच में क्रान्ति ला दी ।

◈ **मृत्यु** : ओजस्वी शैली में देश और राष्ट्र जागृति हेतु कई अमूल्य ग्रन्थ लिखे, कार्य काल-१८९३-१९०२ (९ वर्ष) अत्याधिक मानसिक और शारीरिक परिश्रम से शीघ्र ही स्वास्थ्य क्षीण होने लगा ! दिन रात का भ्रमण, प्रवचन और लेखन उनको भारी पड़ा! केवल ३९ वर्ष की अल्पायु में ही राम कृष्ण मिशन स्थापित कर के शरीर छोड़ गये! १८६३-१९०२ (३९ वर्ष) जुलाई १९०२ को मृत्यु ।

◈ **विचार व विद्वता :** मूर्तिपूजा, मांस भक्षण व मतमतान्तरों के घोर विरोधी । वेद व संस्कृत व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान ।	◈ **विचार :** वेदादि ग्रन्थों, मूर्तिपूजा, मांस मक्षण, बाल विवाह, विधवा विवाह, बौद्ध-ईसाई-मुस्लिम-मतों सम्बन्धी विचार अस्पष्ट । वेद व संस्कृत व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान न्यून ।

ढ आर्ष एवं अनार्ष पाठ विधि

१. आर्ष पाठ विधि में केवल आर्ष ग्रन्थों के पठन को मान्यता है । यथा वेद, उप-वेद, वेदाङ्ग, ब्राह्मण ग्रन्थ वेदानुकूल दर्शन ग्रन्थ, सूत्र ग्रन्थ, स्मृतियां एवं उपनिषदादि। अनार्ष ग्रन्थ जो वेद विरुद्ध है यथा चन्द्रिका, कौमुदी, मनोरमा आदि का पठन निषिद्ध है ।

२. पाणिनि मुनि कृत संस्कृत व्याकरणानुसार प्रथम अक्षर ज्ञान, उन का स्थान, प्रयत्न तथा करण का ज्ञान प्राप्त करना तब संधि, संधि भेद, समास, लकार और विभक्तियों का ज्ञान लेकर धातु पाठ करना ।

३. व्याकरण पढ़ कर यास्क मुनि कृत निघण्टु और निरुक्त का अध्ययन करें। तत्पश्चात छन्द ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन करें। नवीन रचना और श्लोक बनाने की रीति यथावत् सीखें ।

४. पश्चात् वाल्मीकिय रामायण और व्यास कृत महाभारत का अध्ययन करें। विदुर नीति आदि अच्छे प्रकरणों से व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करें।

५. तदन्तर छः दर्शन, उपनिषद सरल व्याकरणयुक्त ढ़ग से पढ़ें।

thearyasamaj.org

चारों ब्राह्मण, मनुस्मृति और चारों वेदों को स्वर, शब्द-अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया सहित पढ़ना ही आर्ष विधि के अन्तर्गत आता है ।

६. जो वेद को स्वर और पाठमात्र पढ़ के अर्थ नहीं जानता वह जैसा वृक्ष डाली, पत्ते, फल, फूल और अन्य पशु धान्य आदि का भार उठाते हैं, वैसे भारवाह अर्थात भार को ढोने वाले कहलाते हैं। वेद पाठ का सम्पूर्ण आनन्द उसी को मिलता है जो शुद्ध शब्द-अर्थ सम्बन्ध को समझ कर पाठ करता है । आर्ष विधि से विरुद्ध और वेद विरुद्ध साहित्य का पठन अनार्ष पठन विधि में आता है ।

ण वृत्ति - संस्कार

वृति-मनुष्य का आत्मा मन के साथ संयुक्त होता है और मन इन्द्रियों के साथ संयुक्त रहता है। इन्द्रियां विषयों के साथ संयुक्त रहती है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ पांच भिन्न विषयों के प्रति स्वाभाषिक रूप से आकृष्ट रहती है। यथा जीव का घ्राण से गन्ध, त्वचा से स्पर्श और नेत्र से रूप आदि का ज्ञान और सम्बन्ध जुड़ता है। यही ज्ञान जीव की शक्ति और दुर्बलता है। जैसे हाथी संगीत से और हरिण सुगन्ध से आकर्षित रहने से ही वे बन्धन में पड़ कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं । इन्द्रियों का विषयों के साथ मन को बांधने को ही वृति कहते हैं। वृत्तियां प्रत्यक्ष, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति पाँच प्रकार की होती हैं । विवेक से इन वृत्तियों का त्याग सम्भव है ।

संस्कार — इन्द्रियों का विषयों के साथ व्यवहार के प्रत्येक **अनुभव का अन्तःकरण पर चिन्ह अंकित होता है** । और इस प्रकार के बार-बार अनुभव के जो गहरे चिन्ह अंकित हो जाते हैं वे जीव को वैसी परिस्थिति में पहले जैसा व्यवहार करने को प्रेरित करते हैं।

यह संस्कार (इस जन्म के या पूर्व जन्म के भी) जीव के व्यवहार को प्रभावित करते हैं ।

योगाभ्यास जहां इन वृत्तियों के दमन की एक सफल विधि हैं वहां संस्कार रूपी बीजों को दग्ध करने का भी कार्य करता है। बिना संस्कारों को जलाये ये बीज फिर से इन्द्रियों और विषयों के सम्बन्ध रूप में उग जाते हैं । वृत्तियों और संस्कारों, दोनों को वश में करने से ही असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था सम्भव है । इस समाधिस्थ मनुष्य को पाँचों क्लेश पीडित नहीं करते और वह जीवन मुक्त अवस्था प्रप्त कर लेता है ।

thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द कृत भूमिका व अनुभूमिकाएँ

भूमिका :— भूमिका में प्रथम महर्षि ने दूसरे संस्करण के विषय में लिखा है कि प्रथम संस्करण के समय हिन्दी भाषा का मुझे विशेष परिज्ञान नहीं था परन्तु अब यह भाषा मैंने व्याकरण अनुसार सीख कर अभ्यास कर लिया है और इस कारण प्रथम संस्करण से थोड़ा भाषा भेद किया गया है । परन्तु अर्थ भेद नहीं किया गया है । पहले छपे ग्रन्थ में कहीं-कहीं जो भूल रही थी उस का शोध कर लिया गया है ।

तदान्तर भूमिका में ग्रन्थ का परिचय देते हुए पूर्वार्ध के दस और उत्तरार्ध के चार समुल्लास और उन के विषयों को सूचीबद्ध किया है ।

इसके पश्चात महर्षि ने इस ग्रन्थ को लिखने का अपना मन्तव्य स्पष्ट करते हुए लिखा है, "सत्यार्थ का प्रकाश करना, अर्थात् जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उस को मिथ्या प्रतिपादित करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहलाता जो सत्य के स्थान पर असत्य और असत्य के स्थान पर सत्य का प्रकाश किया जाये किन्तु जो जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे के सत्य को भी असत्य करने में प्रवृत्त रहता है, इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता । इसलिये विद्वान आप्तों का यह मुख्य काम है कि उपदेश

thearyasamaj.org

व लेख द्वारा सब मनुष्यों के आगे सत्याऽसत्य का स्वरूप समर्पित कर देना! पश्चात् मनुष्य लोग स्वयं अपना हिताहित विचार कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का त्याग कर के सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का जानने हारा है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ कर असत्य पर झुक जाते हैं ।"

"इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना या किसी की हानि का तात्पर्य है। किन्तु जिस से मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्य-असत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें! अन्यथा कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है बिना सत्योपदेश के ।"

इस के पश्चात महर्षि सब मतों के विद्वानों से अनुरोध करते हैं कि वे पक्षपात छोड़ कर मिल बैठ कर सब मतों की सत्य बातों को ग्रहण करें और जो एक दूसरे के विरुद्ध मिथ्या बातें हैं उन का त्याग कर परस्पर प्रीति से बर्तें! विद्वानों में विरोध से अविद्वानों का विरोध बढ़ अनेकविध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है।

स्वामी जी लिखते है कि अन्त में विजय सत्य की ही होती है ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है और इसी से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है ।

"सत्य मेव जयति नानृतं सत्येन पन्था वितंतो देवयानः" यह सत्य है कि विद्या और धर्म प्राप्ति के कर्म प्रथम करने में विष के समान और पश्चात् परिणाम में अमृत के सदृश होते हैं! ऐसी बातों को चित्त में धर के इस ग्रन्थ को रचा है । श्रोता व पाठकगण भी प्रथम प्रेम से देख के इस ग्रन्थ का सत्य-सत्य तात्पर्य जान कर यथेष्ठ करें!

स्वामी जी आगे लिखते हैं कि सत्यार्थ प्रकाश में सब मतों की सत्य और कल्याणकारी बातों को, जो सब में अविरुद्ध हैं, स्वीकार किया गया है और मिथ्या बातों का खण्डन किया है। खण्डन और मण्डन का अभिप्राय यही है कि विद्वान और साधारण लोग वास्तविकता को जान कर परस्पर प्रीतियुक्त होकर एक मत होवें ।

स्वामी जी कहते हैं कि सत्य की खोज में पक्षपात सब से बड़ा बाधक है । जैसे मैंने आर्यवर्त का हो कर भी स्वदेश के सब मत-मतान्तरों की झूठी बातों का प्रकाश किया है वैसे ही दूसरे देश वालों के मत का भी किया है । ऐसे ही यदि सब देशों के विद्वान पक्षपात रहित हो कर अपने मतों की सत्य और मिथ्या बातों का प्रकाश करें तो बहुत से विरोध स्वतः समाप्त हो जायेंगे ।

इस से आगे महर्षि चारवाक, बौद्ध, जैन आदि नास्तिक मतों की संक्षिप्त चर्चा करते हैं! कुछ चर्चा इन मतों के ग्रन्थों की कर के जैन ग्रन्थों के दोषों पर टिप्पणि भी करते हैं। महर्षि लिखते हैं कि ग्रन्थ कर्ता के तात्पर्य के विरूद्ध मनसा से देखने पर अध्ययन कर्ता को कुछ भी अभिप्राय विदित नहीं होगा। महर्षि यहां आकांक्षा योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य इन चार बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता बताते हैं ताकि ग्रन्थकार का अभिप्राय ठीक से जाना जा सके । जो हठी और दुराग्रही मनुष्य पहले से ही वक्ता या लेखक के विरूद्ध कल्पना रखेगा वह ग्रन्थ की आत्मा की झलक से भी वन्चित ही रहेगा । महर्षि यहां लिखते हैं कि जैसे मैं अन्य धमों के ग्रन्थों को प्रथम ही बुरी दुष्टि से न देख कर उनके गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करता हूँ ऐसा ही सब विद्वानों को करना चाहिए।

सभी मतों के थोड़े-थोड़े दोष प्रकाशित किये हैं मेरे अभिप्राय को न समझने वाले अविद्वान लोग उसको अन्यथा समझेंगे परन्तु विद्वान लोग मेरे परिश्रम का अभिप्राय समझेंगे और गुणों के ग्रहण

thearyasamaj.org

और दोषों के त्याग से एक मत होंगे और इस दिशा में आगे बढ़ेंगे। पक्षपात छोड़ कर सत्यार्थप्रकाश करना हम सब विद्वानों का मुख्य कर्तव्य कर्म है ।

एकादश समुल्लास की अनुभूमिका :– महर्षि लिखते हैं कि पाँच सहस्र वर्ष पूर्व तक संसार में वेदमत के अतिरिक्त कोई दूसरा मत था ही नहीं । वेद ज्ञान ही विद्या से अविरूद्ध और विश्व के लिये कल्याणकारी है । महाभारत युद्ध के पश्चात् वेदों में अप्रवृति होने से अविद्या अंधकार में मनुष्यों की बुद्धि भ्रम युक्त हो गई और जिसके मन में जैसा आया वैसा ही मत चलाया ।

इन सब मतों में चार मत अर्थात पुराणी, जैनी, किरानी, और कुरानी आज के सब मतों के मूल हैं। इनकी शाखाएँ एक सहस्र से अधिक हैं । महर्षि लिखते हैं कि इन मतवादियों और इनके अनुयायियों को सत्य-असत्य का विचार करने में अधिक परिश्रम न करना पड़े इसी लिये इस ग्रन्थ को बनाया है ।

महर्षि स्वीकार करते हैं कि उन्हों ने अपनी बुद्धि, विद्या और जितना चारों मतों के मूल ग्रन्थों के अध्ययन से मुझे बोध हुआ उसके अनुरूप ही यह ग्रन्थ लिखा है । पक्षपात छोड़ कर इस को देखने से सत्य-असस्तय मत सब को विदित हो जायेगा । पश्चात् सब को अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य का ग्रहण और असत्य मत का त्याग कुछ सहज हो जायेगा ।

महर्षि विनम्र अनुरोध करते हैं कि मेरे इस कर्म को यदि उपकार न समझें तो विरोध भी न करें क्योंकि मेरा तात्पर्य किसी को हानि या विरोध करने की नहीं अपितु सत्याऽसत्य का निर्णय करने कराने का है न कि वाद-विवाद अथवा विरोध करने-कराने का। मत-मतान्तरों के विवाद से जगत में जो-जो अनिष्ट हुए हैं, हो रहे

thearyasamaj.org

हैं या होंगे उनको पक्षपात् रहित विद्वज्जन जान सकते हैं । जब तक ये मिथ्या मत-मतान्तरों से उत्पन्न हुआ परस्पर विरोध नहीं छूटेगा तब तक परस्पर प्रीति व आनन्द न होगा । यदि हम सब मनुष्य और विशेष रूप से विद्वज्जन ईष्या-द्वेष छोड़ कर सत्याऽसत्य का निर्णय कर के सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना-कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है । यह निश्चय है कि इन विद्वानों के विरोध ही ने हम सब को विरोध जाल में फंसा रखा है। यदि विद्वज्जन अपना स्वार्थ मुक्त प्रयोजन और हठधर्मी छोड़ सब का कल्याण चाहें तो सभी ऐक्य-मत हो सकते हैं ।

द्वादश समुल्लास की अनुभूमिका :– इस अनुभूमिका में ऋषि लिखते है कि जब आर्यवर्त से वेद विद्या का लोप हुआ तो अविद्या के कारण सत्याऽसत्य का निर्णय करने की बुद्धि जाती रही तभी बौद्ध, जैनादि का वेद विरोधी मत खड़ा हो सका। बौद्ध-जैनादि मत महाभारत के बहुत बाद में हुआ क्यों कि उन के ग्रन्थों में राम और कृष्ण की विस्तार से चर्चा है जब कि वालमीकीय रामायण में या भागवत पुराण आदि में जैन मत का कोई उल्लेख नहीं है! अतः यह मत वैष्णव, शैव और शाक्त मतों के बाद चला ।

महर्षि लिखते हैं कि जो-जो जैन मत के विषय में लिखा है सो उन के धर्म ग्रन्थों के आधार पर ही लिखा है! जैनियों को बुरा नहीं मानना चाहिए क्योंकि यह सब सत्याऽसत्य के निर्णयार्थ ही लिखा है न कि विरोध या हानि करने के लिये जब इस लेख को जैनी या अन्य लोग देखेंगे तो सब को सत्याऽसत्य का बोध होगा और इस विषय पर विचार करने का कारण मिलेगा । वादी-प्रतिवादी हो कर चर्चा करने से या लेख लिखने से ही प्रीति पूर्वक सत्याऽसत्य का निर्णय सम्भव है और यह सब विद्वानों का मुख्य काम है! यदि ऐसा न हो तो मनुष्य जाति की उन्नति कभी न हो । जैन मत बाले अपने

ग्रन्थ किसी को पढ़ने या देखने भी नहीं देते । बड़े परिश्रम से यह पुस्तकें प्राप्त करके जो इस मत बारे लिखा है उस का निश्चय ही इस मत तथा अन्य मतवालों को बहुत लाभ होगा । उन्हें सत्याऽसत्य का बोध हो जायेगा । मेरा परिश्रम भी सफल हो जायेगा ।

महर्षि जैन मत की चर्चा करते हुए लिखते हैं कि शायद इन लोगों को पहले से ही शङ्का थी कि उन के ग्रन्थों में लिखी असम्भव बातों पर कोई विश्वास नहीं करेगा, इसी से सम्भवतः वे अपने ग्रन्थ किसी को देखने तक नहीं देते । यही नहीं, अपने मत वालों को दूसरों के ग्रन्थ पढ़ने में पाप बताते हैं । उन्हें भय रहता है कि दूसरों के ग्रन्थ पढ़ेंगे तो अपने (जैन) मत में श्रद्धा नहीं रहेगी ।

बौद्ध-जैन मत के सम्बन्ध में ऋषि आगे लिखते हैं कि बहुत मनुष्य ऐसे हैं जिन को अपने दोष तो दीखते नहीं किन्तु दूसरों के दोष देखने में अतिउद्यत रहते हैं । यह न्याय की बात नहीं है क्यों कि प्रथम अपने दोष देखने चाहिएं, पश्चात् दूसरों के दोष देखने में औचित्य है ।

त्रयोदश समुल्लास की अनुभूमिका :– इस अनुभूमिका में महर्षि प्रथम लिखते हैं कि बाईबल ईसाइयों के साथ-साथ यहूदियों का भी मान्य धर्म ग्रन्थ है । इस समुल्लास में केवल इसी बाईबल ग्रन्थ के विषय में लिखा है ।

महर्षि लिखते हैं कि बाइबल के भाषान्तर बहुत हुए हैं जिन में से देवनागरी व संस्कृत भाषान्तर देख कर मुझे बहुत सी शंङ्का हुई हैं । इन में से थोड़ी सी इस समुल्लास में लिखी है ।

महर्षि कहते हैं कि यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास के लिये लिखा गया है न कि किसी के दुःख देने या हानि करने के लिये । अभिप्राय यह है कि लेख पढ़ कर सभी लोग

समझ लें कि बाइबल पुस्तक कैसी है और ईसाई मत कैसा है । इस से एक प्रयोजन यह भी सिद्ध होगा कि मनुष्यों का धर्म विषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्याऽसत्य मत और कर्तव्यऽकर्तव्य कर्म सम्बन्धी विषय विदित हो कर सत्य और कर्तव्य कर्म का स्वीकार और असत्य और अकर्तव्य कर्म का त्याग करना सहज हो जायेगा।

महर्षि आगे कहते हैं कि सब मनुष्यों को उचित है कि सब मतों की पुस्तकों को समझ कर कुछ सम्मति या असम्मतियाँ देवें या लिखें, नहीं तो सुना-पढ़ा करें । क्योंकि जैसा पढ़ने से पण्डित होता है वैसा सुनने से बहुश्रुत होता है । केवल सुनने से भी श्रोता स्वयं के गुण-दोष का निर्णय करने में समर्थ हो जाता है और रूढ़िवादिता से बच जाता है ।

मनुष्य का आत्मा सत्याऽसत्य का निर्णय करने में समर्थ होता है! सभी मतों के ग्रन्थ पढ़ कर या केवल सुन कर और परस्पर संवाद से झूठ-सच का निर्णय कर के सत्य पर एक मत हो सकते है ! झगड़ा झूठ और सत्य पर हठधर्मिता से होता है! यदि वादी प्रतिवादी सुविज्ञ हो कर तर्क करें तो वे अवश्य ही एक मत हो सकते हैं । यदि मनोरथ ठीक हो तो चाहे कितनी भी पक्ष-भिन्नता हो, सत्य मत पर सहमति बन सकती है ।

चतुर्दश समुल्लास की अनुभूमिका :— यद्यपि मुसलमानों में भी फिरके होने के कारण कुरान की आयतों के शब्द और अर्थ पर मतभेद हो सकता है तो भी सभी एक मत से केवल कुरान पर ही पूरी-पूरी श्रद्धा रखते हैं ।

महर्षि लिखते हैं कि कुरान अर्बी भाषा में है, जिस का मोलवियों ने उर्दु में अर्थ लिखा है। उस अर्थ का देवनागरी लिपी और आर्य भाषान्तर करवा कर उस के पश्चात बड़े-बड़े अर्बी के विद्वानों

से शुद्ध करवा कर लिखा गया है! यदि कोई कहे कि अर्थ ठीक नहीं तो उस को उचित है कि पहले मोलवी साहिव के तर्जुमे का खण्डन करे, तब इस विषय पर कुछ कहे या लिखे ।

महर्षि अपना आशय स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि यह लेख केवल मनुष्य की उन्नति, सत्याऽसत्य के निर्णय के लिये है । इसलिये सब मतों के ग्रन्थों का अध्ययन कर फिर परस्पर विचार करके दोषों का खण्डन करके गुणों को ग्रहण करें! मेरा प्रयोजन किसी भी अन्य मत पर झूठ-मूठ बुराई या भलाई लगाने का नहीं ! किन्तु जो बुराई है वह बुराई और जो-जो अच्छाई है वह अच्छाई सब को विदित होवे । न कोई बलात किसी पर झूठ चला सके और न ही सत्य को रोक सकें । सत्याऽसत्य ज्ञान होने पर भी जिसकी जैसी इच्छा हो, माने या न माने ।

महर्षि आगे लिखते हैं कि यह सज्जनों की रीति है कि अपने या पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जान कर दोषों का त्याग और गुणों को ग्रहण करें और हठियों के हठ को न्यून करें । क्योंकि पक्षपात पूर्ण हठधर्मी से क्या-क्या अनर्थ नहीं हुए । सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षण-भंगुर जीवन में पराई हानि कर के लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्यों को रखना-मनुष्यत्व से बाहयः है ।

इस लेख में जो कुछ विरूद्ध लिखा गया है, उसको सज्जन लोग विदित कर देवें! तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायेगा, क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह ईर्ष्या-द्वेष, वाद, विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इस को बढ़ाने के अर्थ से एक दूसरे की हानि करने का नहीं अपितु परस्पर लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है । इस लेख के विषय पर विचार कर इष्ट को ग्रहण और अनिष्ट का परित्याग कीजिए यही मेरा निवेदन है ।

*****

thearyasamaj.org

सत्यार्थप्रकाश में योग विद्या

तदा द्रुष्टः स्वरूपेऽवस्थानम् ।

यह पातञ्जल योग का तीसरा सूत्र है । इसको महर्षि ने सत्यार्थ प्रकाश के नवम् समुल्लास के अन्तिम चरण में उद्‌धृत किया है और समुल्लास व योगदर्शन का सार इसमें आ जाता है ।

सूत्र का शब्दार्थ इस प्रकार है :—

(तदा) तब या उस समय अर्थात असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में (द्रष्टुः) द्रष्टा अर्थात आत्मा (स्वरूपे) अपने रूप में (अवस्थानम्) ठहर जाता है अथवा स्थिर हो जाता है ।

पातञ्जली ऋषि ने इस से पूर्व जो दो श्लोक कहे हैं उन का सार इस प्रकार से है । चित्त वृत्तियों की पांच अवस्थायें हैं । १. क्षिप्त, २. मूढ़, ३. विक्षिप्त, ४.एकाग्र, ५. निरूद्ध

पहली तीन अवस्थाओं में चित्त भ्रमित और व्याकुल होता है। कर्म गुणों के अधीन होते हैं वृतियों संयत नहीं होती अतः इन अवस्थाओं में योग सम्भव ही नहीं है! योग के लिये वृत्तियों को अनुशासित करना अनिवार्य है! चौथी एकाग्र अवस्था है जिस में चित्त को वृत्तियों से हटा कर एक विषय पर एकाग्र किया जाता है! यह भी योग की एक प्रक्रिया है । चित्त की इस अवस्था में सत्यार्थ का प्रकाश होता है, सभी क्लेश क्षीण होते हैं, कर्म बन्धन ढीले पड़ जाते हैं और निरोध अवस्था का आकर्षण बढ़ने लगता है । योग की यह अवस्था सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है ।

पांचवी अवस्था अर्थात निरूद्ध में वृत्तियां शान्त हो जाती है! मनुष्य गुणों के अधीन न रह कर उनसे ऊपर उठ जाता है । गुणों के बन्धन टूट जाते हैं । किसी प्रकार की स्पृहा व्याकुल नहीं करती।

योगी मोक्ष आनन्द का प्रत्यक्ष अनुभव करता है । यह आत्मा की परमात्मा से साक्षात्कार की अवस्था है । कोई क्लेश विचलित नहीं करता । इस अवस्था को असम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं ।

निरूद्ध वृत्तियां और वैराग्य से शुद्ध हुई आत्मा निरन्तर ईश्वर चिन्तन का आनन्द अनुभवं करती हैं ।

ऋग्वेद की एक ऋचा विचारनीय है ।

न ऋते त्वदमृहता मादयन्ते । अर्थात तेरे बिना मुक्त आत्माएं आनन्दित नहीं होती। सूत्र के 'द्रष्टु पद का ईश्वर अर्थ समझने पर सूत्रकार पातञ्जली की यह भावना स्पष्ट अभिव्यक्त हो जाती है।

अब जिस प्रकरण में महर्षि ने यह सूत्र उद्‌धृत किया है उस पर विचार करना चाहिए । महर्षि ने इस समुल्लास में विद्या- अविद्या का भेद समझाने के पश्चात बन्ध और मुक्ति पर विस्तार से चर्चा की है । मोक्ष प्राप्ति के लिये प्रथम अविद्या के आवरण को हटा यथार्थ ज्ञान प्राप्ति आवश्यक है । सत्य ज्ञान, सत्य कर्म, सत्य आचरण से और यम-नियमों का पालन करते हुए आत्म शुद्धि अनिवार्य है । इन के अतिरिक्त विवेक, वैराग्य, षट् सम्पत्ति और मुमुक्षत्व ये चार मुख्य साधन महर्षि ने मोक्ष प्राप्ति के बताये हैं । इन सब साधनों के करने और यम-नियमों से आत्मा शुद्धि करने का प्रयोजन विषयों की आसक्ति से चित्त को बन्धन मुक्त करना है । सब वृत्तियों को निरूद्ध करके ही राग-द्वेष, सुख-दुःख, यश-अपयश, पाप-पुण्य आदि द्वन्द्व चित्त को व्याकुल नहीं करते और शान्त हुई आत्मा परमेश्वर के चिन्तन से आनन्द में विभोर रहती है । यह ही असम्प्रज्ञात समाधि है । आत्मा परमात्मा के स्वरूप में स्थिर हो जाती है । मुक्ति या मोक्ष विषय में सभी साधनों को सफलता पूर्वक प्रयुक्त करके आत्मा जिस अवस्था में पहुँचती है वह इस सूत्र में स्पष्ट किया है।

*****

thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द के कुछ हृदय स्पर्शी एवं प्रेरणादायक वचन

भूमिका में ऋषि लिखते हैं —

सर्वदा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानों का मार्ग विस्तृत होता है । इस दृढ़ निश्चय के आलम्ब से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन हो कर कभी सत्यार्थ प्रकाश करने से नहीं हटते । यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि —

"यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्" (गीता)

इसका अभिप्राय यह है कि जो-जो विद्या और धर्म प्राप्ति के कर्म हैं, वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् परिणाम में अमृत के सदृश होते हैं । ऐसी बातों को चित्त में धर कर इस ग्रन्थ को रचा है । आप्त पुरूषों का यह प्रेरणा सूत्र है ।

२. **"माता शत्रु पिता वैरी, येन बालों न पाठितः ।**
सभा मध्ये न शोभन्ते, हंस मध्ये वको यथा ।।"

वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण शत्रु हैं कि जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई हो । वे विद्वानों की सभा में ऐसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला । यही माता-पिता का कर्तव्य कर्म, परम-धर्म और कीर्ति का काम है कि वे अपने सन्तानों को तन, मन, धन, विद्या धर्म और सभ्यता युक्त करें।

यह वचन महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लिखे हैं —

३. महर्षि तृतीय समुल्लास में लिखते हैं कि —

"विद्या विलास मनसो धृतशील शिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ।

संसार दुःख दलनने सुभूषिता ये, धन्य नरा विहित कर्म परोपकारा ।।"

जिन पुरूषों का मन विद्या के विलास से तत्पर, सुन्दर शील स्वभाव युक्त, अभिमान, अपवित्रता से रहित, अन्यों की मलिनता का नाशक सत्योपदेशक, विद्यादान से संसारी जनों के दुःखों को दूर करने से सुभूषित, वेद विहित कर्मों से परोपकार उपकार करने में लगा रहता वे नर और नारी धन्य हैं । बिना इस के किसी को शोभा प्राप्त नहीं होती ।

४. महर्षि चतुर्थ समुल्लास में लिखते हैं –

"अदिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति ।
विद्यातोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति ।।" "मनु"

जल से शरीर के बाहर के अंग, मन सत्याचार से, विद्या और धर्मानुष्ठान से जीवात्मा और बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है । भीतर राग-द्वेष आदि दोषों और बाहर के मलों को दूर कर के शुद्ध रहना (भीतर और बाहर के सब मल साफ करना) अर्थात सत्याऽसत्य के विवेक से सत्य को ग्रहण करना और असत्य के त्याग करने से निश्चय मनुष्य पवित्र होता है ।

५. "महर्षि तृतीय समुल्लास में वेद वचन उद्धृत करते हुए लिखते हैं –

"उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुतत्वः शृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं विसंस्रे जाये पत्य उशती सुवासोः ।।

(ऋग्वेद)

thearyasamaj.org

जो अविद्वान हैं वे सुनते हुए भी नहीं सुनते। देखते हुए भी नहीं देखते, बोलते हुए भी नहीं बोलते अर्थात् अविद्वान लोग उस विद्या वाणी के रहस्य को नहीं जान सकते। और जो शब्द, अर्थ और उन के सम्बन्ध का जानने वाला है उस के लिये विद्या-जैसे सुन्दर वस्त्र आभूषण धारती, अपने पति की कामना करती हुई स्त्री अपना शरीर और स्वरूप का प्रकाश पति के सामने प्रस्तुत करती है:- वैसे विद्या विद्वानों के लिये अपना स्वरूप प्रकाशित करती है, अविद्वानों के लिये नहीं ।

६. महर्षि चतुर्थ समुल्लास में मनु को उद्धृत करते हुए लिखते हैं ।

"दुराचारी हि पुरूषों लोके भवति निन्दितः ।
दुःख भागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ।।
यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत् ।
यद्यदात्मवशं तु स्यात्त त्तत्सेवेत यत्नतः ।।

जो दुराचारी है वह ससांर में सज्जनों के मध्य में निन्दा को प्राप्त, निरन्तर दुःख का भोगने हारा और अनेक प्रकार के रोगों से अल्पायु हो कर शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है । इसलिये ऐसा प्रयत्न करें कि जो-जो पराधीन कर्म हों उन-उन का प्रयत्न से त्याग और जो-जो स्वाधीन कर्म हो उन-उनका प्रयत्न के साथ सेवन करें । क्योंकि जो-जो पराधीन है, वह-वह सब दुःख और जो-जो स्वाधीन है, वह-वह सब सुखदायक हैं ।

७. चाणक्य शतक का एक श्लोक उद्धृत करते हुए महर्षि पाँचवें समुल्लास में लिखते हैं कि –

"विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।।"

विद्वान और राजा कभी तुल्य नहीं हो सकते। क्यों कि राजा

अपने ही देश में सम्मान पाता है और विद्वान सर्वत्र प्रतिष्ठा पाता है। इसलिये चारों आश्रमों में विद्या को प्राथमिकता से प्राप्त करना चाहिए। ब्रह्मचर्य में विद्या पढ़ने, अच्छे संस्कार लेने और बल वृद्धि, गृहस्थ में स्वाध्याय और उत्तम व्यवहार, वानप्रस्थ में ज्ञान वृद्धि, मनन, ध्यान, साधना और सन्यास में धर्म-व्यवहार का ग्रहण, दुष्ट-व्यवहार का त्याग और सत्योपदेश ही श्रेष्ठ कर्म हैं जो व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठा पाने के योग्य बनाते हैं। (प्रत्येक आश्रम लगभग २५वर्ष)

८. षष्ठ समुल्लास में महर्षि "मनु महाराज" को उद्‌धृत करते हुए लिखते हैं –

"हिरण्य भूमि संप्राप्त्या पार्थिवो तथैधते ।
यथा मित्रं ध्रुव लब्धवा कृशमप्यायतिक्षमम् ।।
धर्मज्ञं च कृतज्ञं च तुष्टप्रकृतिमेव च ।
अनुरक्तं स्थिरारम्भं लधुमित्रं प्रशास्यते ।।

राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसे नहीं बढ़ता कि

जैसे निश्चल प्रेमयुक्त भविष्यत् की बातों को सोचने और कार्य सिद्धि करने वाले समर्थ मित्र अथवा दुर्बल मित्र को भी प्राप्त होके बढ़ता है । जो धर्म को जानने, कृतज्ञ (किए हुए उपकार को सदा मानने वाला) प्रसन्न स्वभाव, अनुरागी, स्थिरारम्भी, लघु अर्थात छोटे भी मित्र को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है ।

९. स्तुति, प्रार्थना, उपासना के लिये महर्षि शतपथ ब्राह्मण का वचन उद्‌धृत करते हैं (सप्तम समुल्लास)

असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमयः
मृत्योर्माऽमृतं गमयति ।

हे परम गुरो परमात्मन । आप हम को असत् मार्ग से पृथक्

कर सन्मार्ग को प्राप्त कीजिये । अविद्यान्धकार को छुड़ा के विद्यारूप सूर्य को प्राप्त कीजिये । और मृत्यु रोग से पृथक करके मोक्ष के आनन्द रूप अमृत को प्राप्त कीजिये ।

अर्थात जिस दोष या दुर्गुण से परमेश्वर और अपने को भी पृथक मान के प्रार्थना की जाती है, वह विधि-निषेधमुख होने से निर्गुण प्रार्थना । महर्षि कहते हैं कि प्रार्थना से पूर्व मांगे गये गुण या सुख के लिये पुरूषार्थ करना योग्य है । बिना पुरूषार्थ किये प्रार्थना कभी नहीं करनी चाहिये और न ऐसी प्रार्थना ईश्वर स्वीकार ही करता है ।

१०. मुक्ति विषय पर नवम् समुल्लास में महर्षि तैतिरीय उपनिषद का एक सूत्र उद्धृत करते हुए लिखते हैं जो जीव परमेश्वर की आज्ञापालन, उत्तम कर्म, सत्संग, योगाभ्सास, पूर्वोक्त सब साधन करता है वही मुक्ति को पाता है ।

"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ।
सोऽश्नुते सर्वान् कामान् ब्रह्मणा सह विपश्चितेति ।।

जो जीवात्मा अपनी बुद्धि और आत्मा में स्थिर सत्य-ज्ञान और अनन्त-आनन्द-स्वरूप परमात्मा को जानता है वह उस व्यापक रूप ब्रह्म में स्थिर हो के उस विपश्चित अनन्त विद्यायुक्त के साथ-साथ सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। यही मुक्ति है ।

११. दशम समुल्लास में महर्षि मनु को उदधृत करते हुए लिखते हैं —

"वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम् ।
आचारश्चैव साधुनामात्मनस्तुष्टिरेव च ।।
सर्वन्तु समवेक्ष्येदं निखिल ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्रामाप्यतो विद्वान स्वधर्मे निविशेत वै ।।

सम्पूर्ण वेद, मनुस्मृति तथा ऋषि प्रणीत शास्त्र, सत्पुरूषों का आचार और जिस-जिस कर्म में अपने आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात भय, शंका, लज्जा जिसमें न हो, उन कामों का सेवन करना उचित है । देखो जब कोई मनुष्य मिथ्याभाषण चोरी आदि की इच्छा करता है तभी उस के मन में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न अवश्य होती है । इसलिये वह कर्म करने योग्य नहीं ।

मनुष्य सम्पूर्ण शास्त्र, वेद, सत्पुरूषों के आचार, अपने आत्मा के अविरूद्ध अच्छी प्रकार विचार कर, ज्ञान नेत्र खोल कर के श्रुति-प्रमाण से स्वात्मानुकूल धर्म में प्रवेश करे ।

१२. महर्षि 'मनु महाराज' को उद्धृत करते हुए तृतीय एवं दशम् समुल्लास में लिखते हैं कि —

"इन्द्रियानां विचरतहां विषयेष्व पहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठद्विद्वान्यन्तेव वाजिनाम् ।।
इन्द्रियानाम प्रसऽगेन दोषमृच्छत्य संशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धि नियच्छति ।।

मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाला विषयों में प्रवृत कराती हैं, उनको रोकने में प्रयत्न करे। जैसे घोड़ों को सारथी रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है । इस प्रकार इन्द्रियों को वश में कर के अधर्म मार्ग से हटा कर धर्म मार्ग में सदा चलाया करे ।

क्योंकि इन्द्रियों को विषय आसक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है। और जब इन को जीत कर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है ।

१३. महर्षि दशम् समुल्लास में विदेश यात्रा के पक्ष में तर्क देते हुए लिखते हैं —

thearyasamaj.org

जो मनुष्य देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर में जाने आने में शङ्का नहीं करते, वे देश-देशान्तर के अनेक विध मनुष्यों के समागम, रीति-भांति देखने, अपना राज्य और व्यवाहर बढ़ाने से निर्भय होकर शूरवीर होने लगते हैं। और अच्छे व्यवहार का ग्रहण, बुरी बातों के छोड़ने में तत्पर हो के, बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं। भला जो महाभ्रष्ट म्लेच्छकुलोत्पन्न वेश्या आदि के समागम से आचार भ्रष्ट एवं धर्महीन नहीं होते किन्तु देश-देशान्तर के उत्तम पुरूषों के साथ समागम में छूत और दोष मानना केवल मूर्खता की बात है । यह भ्रममूलक विचार छोड़ने में ही राष्ट्र और व्यक्ति का कल्याण है ।

१४. **"आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्म नित्यता ।**
यमर्था ना पकर्षन्ति से वे पण्डित उच्यते ।।
अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामना ।
अर्थाश्चा ऽ कर्माणा प्रप्सुर्मूढ़ इत्युच्वते बुधैः ।।

जिस का आत्मा ज्ञान; सम्यक् आरम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे; सुख दुःख, हानि-लाभ, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति में हर्ष शोक कभी न करें; धर्म में ही नित्य निश्चित रहे; जिस के मन को उत्तम उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षित न कर सकें, वही पण्डित कहाता है ।

जिस ने कोई शास्त्र न पढ़ा हो और न सुना हो और अतीव घमण्डी हो । दरिद्र हो कर भी बड़े-बड़े मनोरथ करने हारा हो अर्थात बिना कर्म किये उत्तम पदार्थों की इच्छा करने वाला हो उसी को बुद्धिमान लोग मूढ़ कहते हैं ।

उपरोक्त श्लोक महर्षि ने विदुर-प्रजागार प्रकरण (महाभारत) से उदधृत किये है। इनमें विद्वान और मूढ़ के लक्षण बताये हैं ।

१५. महर्षि ने एकादश समुल्लास में पशु बली की निन्दा की है

उसी में चारवाक और आभानक के यह वचन उद्धृत किये हैं ।

"पशुश्चे न्निहतः स्वर्ग ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कथं न हिस्यते ॥
मृतानामिह जन्तुनां श्राद्धं चेतृप्तिकारणम ।
गच्छतामिह जन्तुनां व्यर्थ पाथेयकल्पनम् ॥

जो मार कर अग्नि में होम करने से पशु स्वर्ग को जाते हैं तो यजमान अपने पिता आदि को मार के अग्नि में होम कर के स्वर्ग को क्यों नहीं भेजता । जो मरे हुए मनुष्य की तृप्ति के लिये श्राद्ध और तर्पण होता है तो विदेश में जाने वाले मनुष्य को मार्ग का खर्च खाने-पीने के लिये बांधना व्यर्थ है क्योंकि जब मृतक को श्राद्ध, तर्पण से अन्न-जल पहुंचता है तो जीते हुए पर परदेश में रहने वाले या मार्ग में चलने हारों को घर में रसोई बनी हुई का पत्तल परोस, लोटा भर कर जल उन के नाम का रखने से उन तक क्यों नहीं पहुँचता। जो जीते हुए दूर देश अथवा दस हाथ दूर बैठे-बैठे को दिया हुआ अन्न और जल नहीं पहुँचता तो मरे हुए के पास किसी प्रकार भी नहीं पहुँच सकता ।

१६. सत्यार्थ प्रकाश, के अन्त में स्वमन्तव्यामनतव्य प्रकाश में महर्षि लिखते हैं मनुष्य उसी को कहना चाहिए जो मनन शील होकर स्वयं वत् अन्यों के सुख-दुःख और हानि-लाभ को समझे । अन्यायकारी बलवान से भी न डरे पर धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे ।

आगे महर्षि भर्तृहरि शतक का वचन उद्धृत करते हैं ।

"निन्दन्तु नीतिनिपुण यदि वा स्तुवन्तु,
लक्षमीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अधौव वा मरणमस्तु युगान्तरेवा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा ॥"

नीति में निपुण व्यक्ति की चाहे निन्दा हो या प्रशंसा, धन ऐश्वर्य की प्रप्ति हो या जो पास हो वह भी चला जाये या लम्बे काल तक जीवन बना रहे या आज ही मृत्यु हो जाये, किन्तु जो धीर पुरुष हैं वे सत्य, न्याय, आदर्श के मार्ग से एक कदम भी इधर-उधर नहीं हटते। प्रसन्न चित्त से कष्टों को सहन करते हुए दृढ़ता से उसी मार्ग पर चलते रहते हैं ।

१७. सत्यार्थ प्रकाश के एकादश समुल्लास में महर्षि मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए तैतिरीय उपनिषद् का यह वचन उद्धृत करते हैं।

मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव ।

प्रथम 'माता' मूर्ति मति पूजनीय देवता अर्थात् सन्तानों से तन-मन-धन से सेवा कर के माता को प्रसन्न रखना। हिंसा अर्थात् ताड़ना कभी न करना ।

दूसरा 'पिता' सत्कर्तय देव । उसकी भी माता के समान सेवा करनी चाहिये ।

तीसरा 'आचार्य' जो विद्या का देने वाला है उस की भी तन-मन-धन से सेवा और सत्कार करना चाहिये ।

चौथा अतिथि जो विद्वान, धर्मिक, निष्कपटी, सब की उन्नति चाहने वाला, जगत में भ्रमण करता हुआ, सत्य उपदेश से सब को सुखी करता रहे, उस की सेवा करें । ये ही परमेश्वर को प्राप्त होने की सीढ़ियां हैं। इन की सेवा न करके जो पाषाण आदि मूर्ति पूजते हैं, वे अतीव पामर नरकगामी हैं ।

thearyasamaj.org

१८. महर्षि नवम् समुल्लास में पञ्च क्लेशों का उल्लेख करते हुए योग शास्त्र का सूत्र उउ्धृत करते हुए लिखते हैं —

"अविद्याऽस्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ॥

दुष्ट ज्ञान अर्थात् विपरीत ज्ञान जिस में सत्य-असत्य, नित्य-अनित्य, कर्तव्य-अकर्तव्य, पवित्र-अपवित्र का भेद स्पष्ट न हो अन्य में अन्य की दृष्टि हो वह अविद्या । पृथक वर्तमान बुद्धि को आत्मा से भिन्न न समझना ही अस्मिता है। सुख में प्रीति अथवा राग और दुःख से अप्रीति अथवा द्वेष । सब प्राणि मात्र की यह इच्छा सदा रहती है, "मैं सदा शरीरस्थ रहूँ, मरूं नही ।"मृत्यु के भय का नाम ही अभिनिवेश है ।

इन पाँचों क्लेशों को योगभ्यास से छुडा देने पर ब्रह्म को प्राप्त हो के मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिए ।

१९. महर्षि नवम् समुल्लास में गुणों की विवेचना करते हुए मनु के वचन उद्धृत करते हुए लिखते हैं ।

"यत्कर्म कृत्वा कुर्वश्च करिष्यंश्चैव लज्जति ।
तज्ज्ञेयं विदुषा सर्वं तामसं गुणलक्षणम् ॥
यस्सर्वेणेच्छति ज्ञातुं यन्न लज्जति चाचरन् ।
येन तुष्यति चात्मास्य तत्सत्त्वगुण लक्षणम् ॥

जब अपना आत्मा जिस कर्म को करके, करता हुआ और करने की इच्छा से लज्जा, शङ्का और भय को प्राप्त होवे तब जानो कि मुझ में **प्रवृद्ध** तमोगुण है । तमोगुण के प्रभुत्व को जानने की यह कसौटी है ।

जब मनुष्य का आत्मा सब से ज्ञान ग्रहण करने की इच्छा रक्खे और गुण ग्रहण करता जाये, अच्छे कर्मों में लज्जा न करे और

जिस कर्म के करने से आत्मा प्रसन्न होवे अर्थात धर्माचरण में ही रुचि रहे, तब समझना कि मुझमें सत्त्व गुण प्रबल है ।

२०. चतुर्थ समुल्लास में वर्ण जन्मना है या कर्मना, इस विषय पर विचार प्रस्तुत करते हुए महर्षि 'मनु' के वचन और आपस्तम्भ का सूत्र उद्‌धृत करते हुए लिखते हैं —

"शुद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चौति शूद्रक्तम ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्या द्वैश्यात्तथैव च ॥ ('मनु')
धर्मचर्य्यया जधन्यो वर्णः पूर्व वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ॥१॥
अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं वर्णमावपते जातिपरिवृतौश।
(आपस्तम्भ सूत्र)

जो शूद्र कुल में उत्पन्न होके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के सदृश गुण वाला हो तो वह शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हो जाये, वैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के कुल में उत्पन्न हुआ शूद्र के सदृश हों, तो शूद्र हो जाये, वैसे ही क्षत्रिय, वैश्य के कुल में उत्पन्न हो के ब्राह्मण वा शूद्र के समान होने से ब्राह्मण और शूद्र भी हो जाते हैं। अर्थात् चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष या स्त्री हो, वह-वह उसी वर्ण में गिना जाये ।

धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम-उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस जिस के योग्य होवे ? वैसे अधर्माचरण से पूर्व-पूर्व अर्थात् उत्तम-उत्तम वर्णवाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्णों को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे ॥ २ ॥

२१. यज्ञ के लाभ :— उत्तम-उत्तम पदार्थों व शुद्ध घी ही से वेद मंत्रों द्वारा प्रातः सायं हवन करने से शरीर मन बुद्धि आत्मा पवित्र

होता है, वायुमण्डल से रोगों के कीटाणुओं का नाश होता है, परिवार के सदस्यों में प्रेम व एकता बढ़ती है, समय पर वर्षा होती है, अन्न, फल, फूल प्रचुर मात्रा में होते हैं । मलमूत्र त्याग करने, वाहनों का प्रयोग करने, सांस लेने, पसीना आदि से जो दुर्गन्ध होती है उसको हवन द्वारा दूर न करने से पाप लगता है नीच योनियों में जाना पड़ता है । प्रतिदिन हवन करने वाला मनुष्य न केवल पापों से बचता है अपितु प्रदिदिन थोडे खर्च व समय में महान पुण्य कमा लेता है और निश्चित रूपेण मनुष्य जन्म पाता है, यज्ञ से उत्पन्न गैसों में भेदन शक्ति होती है जो गन्दी वायु को छिन्न भिन्न कर शुद्ध करती है ।

२२. जब तक भिन्न-भिन्न मतमतान्तरों का नाश होकर एक वैदिक धर्म की स्थापना नहीं हो जाती विश्व में एकता व शान्ति नहीं हो सकती ।

२३. जो मनुष्य दूसरो का मांस खा कर अपना मांस वढ़ाता है उससे बढ़ कर नीच और कौन होगा ?

२४. परमात्मा सब को प्राप्त है परन्तु उसकी कृपा सब को प्राप्त नहीं है कोई जितना परोपकार व साधना करता है उतना ही उस पर परमात्मा कृपा करता है ।

२५. मनुष्य अन्यायकारी बलवान से भी न डरे और धर्मात्मा निर्वल से भी डरता रहे ।

२६. मैं सत्य को कहने में कभी रुकूगां नहीं चाहे मेरे शरीर की बत्ती वना कर जला डालो ।

मतमतान्तरों की असम्भव बातें

(१) **<u>हिन्दुमत</u>** :- हिन्दु कोई मत नहीं है । हिन्दु का फारसी भाषा में अर्थ है चोर । भारत में रहने वालों को वे लोग घृणा से हिन्दु कहते थे और आर्यवर्त देश को हिन्दुस्तान! अतः हिन्दु मत कहना कुछ अटपटा लगता है! फिर भी यदि हिन्दु को पुराणियों का मत कहते हैं तो इसकी असम्भव बातें इस प्रकार हैं ।

- मृतक श्राद्ध द्वारा पितरों को अन्न और जल से तृप्त करना तर्क संगत नहीं । महर्षि अनुसार यदि मृतकों के नाम का अन्न और जल ब्राह्मणों को खिलाने से उन तक पहुँच जाता है तो यात्रा पर जाने वालों के लिये भी पत्तल निकाल कर उन को तृप्त क्यों नहीं कर सकते, साथ बांध कर क्यों देते हैं ।
- पाषाण मूर्तियों में निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान परमेश्वर को ढूंढ़ना एक असम्भव अंधविश्वास है । खण्डित होने वाली मूर्ति में उस अखण्ड परमेश्वर का अद्यारोप निरीमूढ़ता का लक्षण है ।
- मुक्ति अनन्तकाल के लिए होती है और आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है यह भी असम्भव भ्रम है! सीमित सामर्थ्य से सीमित फल से अनन्त मुक्ति असम्भव है

पुराणों की बातों को तो लेखक की अतिश्योक्तियां कह सकते हैं पर ऊपर दी सैधान्तिक बातें किसी तर्क से उचित नहीं हैं ।

(२) **<u>मुसलमान मत</u>** :- जब मूसा ने हम से (अल्लाह से) अपनी कौम के लिये पानी मांगा तो हम ने कहा, "ए मूसा! अपना असा

thearyasamaj.org

पत्थर पर मारा, उसके ऐसा करते ही उस में से बारह चश्मे फूट निकले ।

- यदि कर्ज़ दो तुम अल्लाह को तो वह कर्ज़ दुगना करेगा । कर्ज देने पर वह तुम्हारे पाप क्षमा कर देगा । इस आयत में स्पष्ट रूप से दो असम्भव बातें लिखी है । एक तो परमेश्वर अपनी प्रजा को देता है लेता नहीं फिर पैसे का कर्ज़ लेने में अल्लाह का प्रयोजन क्या है । निश्चित यह कर्ज़ मुहम्मद साहिब अपने दुष्प्रयोजन की सिद्धि के लिये अल्लाह के नाम पर मांग रहे होंगे ।
- पाप क्षमा करने की बात अबोध लोगों को ठगने वाली है । हर कर्म का फल निश्चित मिलना है और कर्ता ने भोगना है! पाप तो स्वयं परमेश्वर भी क्षमा नहीं कर सकता । करे, तो पक्षपात पूर्ण अन्याय शुरू हो जाये ।
- काफिरों (कुरान पर विश्वास न करने वाले) को मारने से बहिष्त में शराब और शबाब अल्लाह बखशता है। यह बहिष्त सातवें आसमान पर है । क्या अल्लाह ने सातवें आसमान पर वेश्या घर खोल रखा हैं ? संकीर्ण विचारों के प्रसार का इस से नीच उदाहरण और किसी मत में शायद ही मिले ।

(३) <u>**सिक्ख**</u> :— श्राद्ध आदि कर्म काण्ड के विरुद्ध खड़ा हुआ सिक्ख मत आज सब से अधिक रूढ़िवादिता और अंध विश्वास में फंसा है ।

- पंजा साहिब (पाकिस्तान) में श्रद्धा इस अंध विश्वास से जुड़ी है कि गुरुनानव देव जी ने एक गिरते हुए पर्वत को अपने पंजे

thearyasamaj.org

से थाम दिया था! आज भी वहां पहाड़ पर पंजे का चिन्ह अंकित है । ऐसे कितने ही चमत्कारों की कथायें गुरु नानक देव जी के साथ जोड़ कर उन्हें परम पुरुष बनाने का प्रयास किया गया है ।

- गुरु ग्रन्थ साहिब (सिक्ख मत का अध्यात्मिक ग्रन्थ) में आज से लगभग ४०० वर्ष पूर्व के अल्पज्ञ संतों की रचनायें संयोजित की गई हैं पर सिक्खों को यह आदेश है कि इसे इलाही बाणी मानें! सिक्ख ग्रन्थ साहिब को वेदों के तुल्य मानते हैं । ईश्वरीय ज्ञान के समकक्ष कहना एक असम्भव उक्ति है ग्रन्थ साहिब की भाषा और ज्ञान दोनों अपरिपक्व हैं ।
- दशम् गुरु गोबिन्द सिंह जी ने बहुत वीरता पूर्ण कृत्य किये परन्तु एक ऐसा भ्रम भी फैलाया जो तर्क संगत नहीं । उन्होंने कहा कि, "मैंने तप से चण्डी देवी को सिद्ध किया है । देवी ने मुझे खड्ग देकर शत्रुओं से लड़कर विजय पाने का वरदान दिया है ।" उन्होंने समय की मांग के अनुसार पाँच ककार धारण करने का सिक्खों को आदेश दिया जिसे आज भी सिक्ख बिना समय की जरूरत के केवल अंधविश्वासी रूढ़िवादियों की भांति मान रहे हैं ।

(४) **ईसाई** – ईसाई लोग सब से अधिक शिक्षित होते हुए भी सबसे अधिक रूढ़िवादी हैं । बाईबल की अनेक असम्भव बातों को वे अशिक्षितों की भांति मानते और उन पर विश्वास करते हैं :-

- ईश्वर ने धूलि से अपने सदृश आदम को बनाया और उसे गहरी नींद में सुला दिया! फिर सोते हुए मानव की एक पसली निकाली और उस से परमेश्वर ने हौवा (नारी) को बनाया

और उसे भी आदम के पास सुला दिया । आज कोई सुविज्ञ व्यक्ति तर्क के आधार पर इन्हें प्रमाणित नहीं कर सकता है और न ही मान सकता है ।

- पोप और पादरियों के समक्ष पाप स्वीकार कर लेने भर प्रभु पापियों के पाप क्षमा कर देता है । इस बात को पोप साहिब और पादरियों ने अपने हित में खूब भुनाया 'स्वीकारोक्ति के बाद न समाप्त होने वाला आर्थिक और देहिक शोषण खूब चला! साथ ही धन के बदले स्वर्ग का प्रवेश पत्र देने के धन्धे ने तो पोप को सारी दुनिया में बदनाम कर दिया पर अन्ध विश्वासियों के लिये यह अभी भी बन्द नहीं हुआ ।
- ईश्वर ने झाड़ी में छुपे हुए मूसा को पुकार कर पूछा ,"हे मूसा! तेरे हाथ में क्या है ।" मूसा ने कहा कि छड़ी है तब ईश्वर ने कहा, "उसे जमीन पर रख दें ।" छड़ी जमीन पर रखते ही वह सांप बन गई । तब ईश्वर ने कहा, "डर मत ! हाथ बढ़ा और उस की पूंछ पकड़ ले ।" मूसा ने सांप की पूंछ पकड़ी तो वह फिर से छड़ी बन गई । इस प्रकार की चमत्कार पूर्ण परन्तु असम्भव बातों से बाईबल भरी पड़ी है।

(५) **जैनमत** – मूर्ति पूजा पर जैन मत में बहुत विश्वास है यह अंधविश्वास इस सीमा तक है कि इन के धार्मिक ग्रन्थ रत्नसार में मूर्ति पूजा का फल इस प्रकार लिखा है ।

- मूर्ति पूजा से रोग, पीड़ा महादोष छूट जाते हैं । पाँच कौड़ी का फूल चढ़ाने से १८ देश का राज मिला । गप्पबाजी की प्रतियोगिता में रत्न सार सब से आगे है ।
- जैन मत जन्म-मरण चक्कर में पड़े हुए तीर्थांकरों को ईश्वर

मानता है। जगत् को स्वयं सिद्ध और अनादि मानता है! ईश्वर की सत्ता को नहीं मानता। जगत में अवस्थान्तर हम नित्य प्रति देखते हैं इसलिये यह उत्पत्ति-विनाश रहित अनादि नहीं हो सकता ! हर कार्य का कारण अवश्य होता है अतः जगत् उत्पत्ति रूपी कार्य बिना कारण के सम्भव नहीं। ईश्वर का न होना और मरण धर्मा तीर्थाङ्करों का ईश्वर होना असम्भव बातें हैं। ईश्वर सदा मुक्त है जबकि तीर्थाङ्कर जन्म मरण के बन्धन में पड़ते हैं।

◈ **ऐसे ही तत्व विवेक में वर्णित है** — एक **नन्दमणिकार सेठ ने बावड़ी बनवाई।** उस से धर्म भ्रष्ट हो कर उसे सोलह महारोग हुए मर कर उसी बावड़ी में मेंढक हुआ ! महावीर के दर्शन होने पर उसे जाति स्मरण हुआ ! कितनी विद्या विरूद्ध असम्भव और मिथ्या बात है! लोक कल्याण के कार्य करने से यदि रोग होते हैं और वे रोग केवल दर्शन मात्र से छूटते हैं तो इस से बड़ी अविद्या की बात कोई हो ही नहीं सकती।

(६) **बौद्धमत** — अन्य मतों की भांति बौद्धमत में भी बहुत सी असम्भव बातें हैं :-

◈ बौद्ध शून्य को एक पदार्थ मानते हैं। इनके अनुसार जो भौतिक पदार्थ दिखाई पड़ते हैं वे केवल भीतरीज्ञान में भासते हैं। वास्तविक्ता शून्य के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

जो सब शून्य हो तो शून्य को शून्य कैसे जान सके। अतः शून्य से अलग भी कोई पदार्थ है जिस को शून्य का ज्ञान होता है। सभी पदार्थों को नकार कर शून्य कहना ज्ञान-विज्ञान द्वारा प्रमाणित नहीं होता।

thearyasamaj.org

◈ संसार मूल रूप में सर्वथा दुःखमय है, यह बौद्ध आचार्यों और तीर्थाङ्करों का मुख्य प्रचार बिन्दु है ।

सुख और दुःख सापेक्ष अवस्थायें हैं! /बिना एक के दूसरे का भान नहीं हो सकता 'वास्तव में ईश्वर ने हमें सब सुख दिये है दुःख तो हमारे दुष्कर्मों से उपजते हैं । धूप छाया की भंति सुख-दुःख स्थाई अवस्था नहीं हैं ।

◈ बौद्धों में मोक्ष का एक ही उपाय द्वादशायतन पूजा बहुत सीमा तक वाममार्गियों के पुष्टिवाद से लिया गया है ।

पाँच कर्मेन्द्रियां, पाँच ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि इन बारह का ही सत्कार अर्थात इन को आनन्द में प्रवृत्त करना बौद्धों का मत है। जो बौद्ध संसार को दुःख रूप मानते हैं वे इन्द्रियों को विषय सुख से तृप्त करने का मार्ग क्यों अपनाते है। सब जानते हैं कि अल्प काल के विषय सुख का परिणाम दीर्घ काल तक दुःख भोगने में होता है। इस प्रकार विषयी वाम मार्गियों और बौद्धों में अन्तर कहाँ रहा ।

(७) **कबीर मत** – कबीर जी रूढ़िवाद और पाखण्डवाद के उग्र विरोधी थे पर उन के मत में यही दोष प्रचुर मात्रा में मिलते हैं –

◈ कबीर जी के अनुयायी कबीर जी को ब्रह्मा, विष्णु और महेश से भी पहले अवतरित हुए मानते हैं। यह असम्भव है क्यों कि सब जानते हैं कि कबीर जी लगभग ५०० वर्ष पूर्व ही हुए जब कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश जो परमात्मा के ही नाम हैं उन का उल्लेख वेदों और प्राचीन शास्त्रों में मिलता है इस सम्बन्ध में वे यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का आठवां मन्त्र उद्धृत करते है :–

"स पर्यगाच्छुक्रमकायम व्रणमस्नविरं,

शुद्धमपापविद्धं कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतः अर्थान् व्यदृधात शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।

कविः और मनीषी की सन्धि रूप र को कवि के साथ टांक कर कबीर बनाने का प्रयास मूढता का प्रतीक है ।

- दूसरी असम्भव बात कबीर जी के जन्म और मृत्यु के सम्बन्ध में प्रचलित है। अन्धविश्वासी श्रद्धालु मानते हैं कि कबीर जी गर्भ से नहीं अपितु फूलों में से उत्पन्न हुए और मृत्यु के पश्चात् उन का शरीर फूलों में ही बदल गया। यह कल्पना किसी प्रकार सृष्टि नियमों से मेल नहीं खाती ।
- कबीर मतावलम्बियों अनुसार जो गूढ़ ज्ञान वेदों में भी नहीं उस को भी कबीर जी जानते थे। यह बात सर्वविदित है कि कबीर जी नितान्त अनपढ़ थे! कबीर जी को जो अध्यात्मिक ज्ञान था वह साधु सन्तों के सत्संग या अपने अनुभवों के कारण था! उन की भाषा भी शुद्ध न हो कर साधुकड़ी थी । हां! इन की शैली बहुत मुखर थी और साधारण जनों को आकर्षित करती थी! परन्तु उन को प्रकाण्ड पण्डित कहना औद वेद से अधिक का ज्ञाता कहना व्यर्थ की अटकलबाजी है ।

(८) **गुसाई मत** – गुसाई अपने मत को पुष्टि मार्ग मानते हैं। शारीरिक दुर्बलता को अभिशाप मानते हैं। शरीर को पुष्ट करना और सब प्रकार के भोग-विलास ही इन का ध्येय है! ऐसा प्रतीत होता है कि वाममार्ग ने अध्यात्मिक ओढ़नी लिपटा कर यह नया रूप धर लिया हो ।

- गुसाई गुरु स्वयं को कृष्ण का अवतार बताता है और हर

thearyasamaj.org

प्रकार की अश्लील बातों में श्री कृष्ण का नाम साथ जोड़ता है ।

- गुसाई स्वर्ग लोक को गो-लोक कहते हैं । वहां का प्रवेश मिलना या न मिलना गुरु जी की इच्छा और प्रसन्नता पर निर्भर है। गुरु जी को घर का हर पदार्थ यहां तक कि बहु-बेटी भी भेंट करो तो प्रवेश सहज है अन्यथा नहीं।
- गोलोक का दृष्य जो गुरु जी भक्तों के आगे प्रस्तुत करते हैं वह सब से बड़ा असम्भव पाखण्ड है। गोलोक में एक पुरुष (कृष्ण) और बाकी सब स्त्रियां (गोपियां) होती हैं। आनन्द के वातावरण में रास-विलास होता रहता है । श्री कृष्ण अनन्त सामर्थ्यवान हैं अतः सब गोपियां तृप्त और प्रसन्न रहती हैं ।

इस मत में अध्यात्म केवल नाम को है अन्यथा सब उल-जलूल असम्भव बातें हैं ।

(९) **शैव मत** – निन्दित वाममार्ग की नास्तिक्ता और व्यभिचार युक्त अश्लील कर्म-काण्ड को जब सभ्य समाज ने नकार दिया तो वे शिव जी को इष्ट बना कर शैव मत के नाम से रुद्राक्ष और धूनी की महिमा गाते हुए समाज में प्रतिष्ठा ढूंढ़ने लगे । इस मत की असम्भव बातें इस प्रकार हैं :-

- रुद्राक्ष पहिनने, त्रिशूल धारण करने और ऊँ नमोः शिवाय का जाप करने से आत्मा पवित्र हो जाती है और मोक्ष का द्वार खुल जाता है ।

रुद्राक्ष धारिणः पादौ प्रक्षाल्याद्भि पिवेन्नरः ।
सर्वपाप विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते ॥

रुद्राक्षधारी के चरण धो कर पीने से स्वर्ग मिलता है और बिना रुद्राक्ष धारण किये यदि ब्राह्मण भी पुण्य कर्म करता है तो भी नरक में जाता है ।

- शैवों ने शिव की लिंगकृति का पूतन आरम्भ किया । स्पष्ट ही शिव मन्दिरों में स्थापित शिव लिङ्ग पुरुष शिशिन का ही प्रतीक है तथा जिस जलधारी में उसे स्थित किया जाता है वह नारी योनि का प्रतीक है । महर्षि ने उचित ही इस नग्नता पर बड़ा क्षोभ व्यक्त किया है । उन्होंने इस विभीत्स्य कृत्य को पामरपन और लज्जाजनक बताया है ।
- शैवों में शिवरात्रि और अन्य उत्सवों पर भांग धतूरा, गांजा, मदिरा आदि का सेवन शुभ माना है । शिवजी स्वयं नशेड़ी थे ऐसा कह कर वे अपने कुकृत्य को उचित प्रमाणित करते हैं ।

(१०) **स्वामी नारायण मत** – इस मत में भी चमत्कारों के माध्यम से लोगों को मूर्ख बनाने का कुचक्र है ।

- योजनानुसार किसी चेले की नस दबा कर उसे बेहोश कर देते हैं और घोषणा यह करते हैं कि अमुक साधु समाधि में चला गया है। लोगों से कीतर्न-भजन कराते हैं। भेंट स्वीकार करते हैं और फिर कई घण्टे बाद होश आने पर नारायण जी से अपने साक्षात्कार का वृत्तान्त उस से सुनते और जय-जय कार करते हुए बहुत चढ़ावा और दान देते हैं । यह सब धन पुजारियों और गुरु जी के विलास में अपव्यय हो जाता है ।
- एक बात बार-बार दोहराने से पुजारी लोग नहीं चूकते कि सहजानन्द जी नित्य सफेद घोड़े पर बैठ कर मन्दिर में आते हैं। पर किसी को दिखई नहीं देते । महन्त लोग मरने वाले

को भी नहीं छोड़ते! उनके कान में सहजानन्द जी का मन्त्र फूंक कर उस से उस की सम्पत्ति का कुछ भाग मन्दिर के लिये ले लेते हैं ।

◈ इस मत में पाखण्ड के अति घृणित दृष्टांत देखने को मिलते हैं! मरते समय किसी बूढ़े साधु को किसी गुप्त कुएं में फैंक कर प्रसिद्धि कर देते हैं कि अमुक महाराज सदेह बैकुण्ठ सिधार गये हैं। सहजानन्द जी आ कर विमान में बिठा कर फूलों की वर्षा के बीच बैकुण्ठ ले गये हैं । इस प्रकार के ही अन्य भ्रमों से चेलों को उल्लु बना कर मठ चलाते और अय्याशी करते हैं ।

(११) **ब्रह्मकुमारी मत –**

◈ इस मत में मूल वैदिक सिद्धान्त,"परमेश्वर सर्वव्यापक है," को ही चुनौती दी गई है । इनके अनुसार, "सर्वव्यापकता भावना है, सिद्धान्त नहीं ।" इन के अनुसार तीन पृथक-पृथक लोक है, १. साकार मनुष्य लोक, २. सूक्ष्म देवताओं का लोक और ३. ब्रह्मलोक या परलोक ! इस लोक का नाम वे निर्वाण धाम "मुक्तिधाम," "शान्ति धाम" अथवा "शिव लोक" भी बताते हैं । इस में सुनहरे लाल रंग का प्रकाश फैला हुआ है। उसे ही ब्रह्मतत्व अथवा छटा तत्व अथवा महातत्व कहा जाता है । इस के अंश मात्र में ही ज्योतिर्बिन्दु आत्मायें मुक्ति की आवस्था में हैं । यहां हरेक धर्म की आत्माओं के संस्थान **(SECTIONS)** हैं । इन सभी के ऊपर, सदा मुक्त, चैतन्य, ज्योतिबिन्दु रूप परमात्मा 'सदाशिव' का स्थान है ।

◈ इतिहास, महाभारत एवं स्वयं गीता साक्षी है कि गीता ज्ञान

श्री कृष्ण ने मोहग्रस्त अर्जुन का कुरुक्षेत्र युद्ध के समय दिया था परन्तु ब्रह्मकुमारी मतानुसार वास्तव में गीता ज्ञान निराकार परमात्मा शिव ने दिया था और फिर गीता ज्ञान से सतयुग में श्री कृष्ण का जन्म हुआ था । अतः गोपेश्वर शिव श्री कृष्ण के भी पारलौकिक पिता हैं और गीता श्री कृष्ण की माता है । श्री कृष्ण सतयुग में हुए यह भी अशुद्ध प्रवचन है और गीता ज्ञान को वेदों के समान ईश्वर कृत बताना मिथ्या भाषण है ।

- वेदों की काल गणना को झुठलाते हुए यह मत सृष्टि की आयु केवल ५००० वर्ष मानता है । उनके अनुसार परमपिता परमात्मा शिव अवतरित हो कर ज्ञानामृत पिला रहे हैं! दूसरा पाखण्डवाद इस बिन्दु के अन्तर्गत अवतारवाद का है।

(१२) **नवीन वेदान्त मत** — वेदान्त मत उपनिषदों पर आधारित है और स्वयं उपनिषदों का दर्शन वेदानुकूल है। परन्तु बिना प्रकरण के अर्थ का अनर्थ करने वाले नवीन वेदान्ती बहुदा असम्भव बातें कह जाते हैं । समाज में फैल रहीं ईश्वर और वेद विरोधी भावना के विरुद्ध शङ्कराचार्य का अभियान सफल तो रहा परन्तु अति उत्साह में शङ्कर वेदज्ञान का भी अतिक्रमण कर गये ।

- उन्होंने घोषणा कर दी कि **"ईश्वर है और केवल ईश्वर ही है"**! दृष्ट-अदृष्ट सब ब्रह्म ही है! जो दिखाई देता है वह ईश्वर की माया के कारण से है! केवल ब्रह्म ही नित्य और अनादि है! शङ्कर जैसा वेदों और शास्त्र का प्रकाण्ड पण्डित इस प्रकार की वेद विरुद्ध धारणा कैसे बना बैठा यह विवेचना का विषय है! यह शायद उनकी आस्तिक्ता का अतिवाद था ।

◈ **अहं ब्रह्मास्मि** — इस वाक्यांश का नवीन वेदान्ती ऐसा अर्थ करते हैं कि मैं ब्रह्म हूँ। अविद्या के आवरण के कारण मैं अपना अस्तित्व भूल गया था। अब विवेक जागने पर मैं चेत गया हूँ कि मैं ही ब्रह्म हूँ। कितनी विकार युक्त और असम्भव गर्वोक्ति है । ब्रह्म अज, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, विभु है और जीव जन्म-मरण-धर्मा, अल्पज्ञ, अल्पसामर्थ्यवान, परिच्छिन है! ऐसे उद्घोष मठाधीश स्वयं अपनी पूजा कराने के लिये करते हैं ।

◈ **मुक्ति में आत्मा का परमात्मा में विलय हो जाता है** और पुनःजन्म नहीं लेना पड़ता! यह असम्भव धारणा है! शुभ कर्मों के फल रूप में मुक्ति मिलती है और पुण्य फल क्षीण होने पर पुनर्जन्म! अनन्त मुक्ति का अर्थ है अपरिमित पुण्य कर्म। सीमित सामर्थ्य से असीम कर्म और इन का अपरिमित फल एक असम्भव कल्पना है ।

thearyasamaj.org

सृष्टि उत्पत्ति एवं वेद उत्पत्ति

सृष्टि के अथाह विस्तार जितना ही अथाह इस की उत्पति से सम्बन्धी भेद है। युगों युगों से इस भेद की पर्तें खोलने के प्रयास ज्ञान और विज्ञान द्वारा हुए हैं । फिर भी अब तक सब से उत्तम और मन-मस्तिष्क द्वारा ग्राह्य व्याख्या वेद मन्त्रों में ही मिलती है । यथा-ऋग्वेद में कहा है —

१. **इयं विसृंष्टिर्यत आषभूव यदि वा दधे यदि वा न ।**
यो अस्याध्यक्षः परमे व्यौमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेदे ॥

"हे मनुष्य! जिस से यह विविध सृष्टि प्रकाशित हुई है । जो धारण और प्रलय कर्ता है। जो इस जगत का स्वामी, जिस व्यापक में यह सब जगत् उत्पति, स्थिति, प्रलय को प्राप्त होता है, सो परमात्मा है, उस को तू मान और किसी दूसरे को सृष्टि कर्ता मत मान ।"

२. **तमं आसीत्तमंसा गूल्हमग्रेंऽप्रकेतं संलिलं संर्वमा इदम् ।**
तुच्छथेनाम्वपिहितं यदासीत्त पंसस्तन्मेहिना जांय तैकंम् ॥

"यह सब जगत् सृष्टि से पहिले अन्धकार से आवृत्त रात्रिरूप में जानने के योग्य, आकाशरूप सब जगत्, तथा 'तुच्छ' अर्थात् अनन्त परमेश्वर के सामने एकादेशी आच्छादित था, पश्चात् परमेश्वर ने अपनी महिमा-सामर्थ्य से कारण रूप से कार्य रूप कर दिया ।"

३. **हिरणयगर्भः समंवर्त्तताग्रे भूतस्यं जातः पतिरेकं आसीत् ।**
स दाधारं पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मैं देवायं हविषां विधमे ॥

"हे मनुष्यो! जो सब सूर्यादि तेजस्वी पदार्थों का आधार और

thearyasamaj.org

जो यह जगत् हुआ था, है और होगा उस का एक अद्वितीय पति परमात्मा इस जगत की उत्पत्ति के पूर्व विद्यमान था, और जिस ने पृथिवी से ले के सूर्यपर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है, उस परमात्मा देव की प्रेम से भक्ति किया करें ।

सृज धातु से सृष्टि शब्द बनता है जिस का अर्थ है सृजी गई, सृष्ट की गई अथवा बनाई । वेदों और अन्य आर्ष ग्रन्थों में सृष्ट करने वाले के सम्बन्ध में स्पष्ट संकेत है अर्थात् ईश्वर ने सृष्टि का सृजन किया। स्पष्ट है उस से पहले सृष्टि नहीं रही होगी। तो प्रश्न उठता है कि यदि सृष्टि पहले नहीं थी तो पहले क्या था जिस का अवस्थान्तरण कर के सृष्टि रची गई। क्यों कि सृष्टि रूपी कार्य, जिस का निमित कारण परमेश्वर वेदों ने कहा है, बिना उपादान कारण के तो हो ही नहीं सकता। वेदों में इस सम्बन्ध में भी स्पष्ट लिखा है, "यह सब जगत् सृष्टि से पहले प्रलय में अंधकार से आवृत था । उस समय न किसी के जानने, न तर्क में लाने और न प्रसिद्ध चिन्हों से युक्त इन्द्रियों के जानने योग्य था और न फिर प्रलय के बाद होगा। केवल वर्तमान में ही जाना जाता है ।"

वेदों में उपादान कारण तत्त्व को प्रकृति कहा है। जो सत्, रज्, और तम् गुण रूप अदृष्य कणों की अवस्था में व्योम में लहराती रहती है। लहराती इस लिये है क्योंकि व्योम में अचल अवस्था में कोई वस्तु रह ही नहीं सकती ।

सत्त्व (शुद्ध) रज (मध्य) और तम (जाड़य) अर्थात जड़ता तीन अति सूक्ष्म और अदृश्य तत्व कणों का जो एक संघात है, उसी का नाम प्रकृति है। उस से जब परमेश्वर संकल्प करता है और रचने के लिये तत्पर होता है, तब अपने ही सामर्थ्य से कार्य करने वाले

thearyasamaj.org

परमेश्वर ने कारण रूप में विद्यमान कणों को कार्य रूप में अवस्थान्तरित कर दिया ।

सब से पहले महत्त नामक तत्व को "मैं हूँ" ऐसे गुण वाले महत्तत्व (बुद्धि) फिर अभिमान करने वाले सामर्थ्यशाली "अहंकार" नामक तत्व उत्पन्न किया । फिर उस से सब त्रिगुणात्मक पाँच तन्मात्राओं-शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध को तथा आत्मोपकारक अथवा निरन्तर गमनशील 'मन' रूपी इन्द्रिय को और विषयों को ग्रहण करने वाली ज्ञानेन्द्रियों (पाँच) नेत्र, नासिका, जिह्वा, कान और त्वचा, तथा कर्मेन्द्रियों (पाँच) हाथ, पैर, वाक, उपस्थ, पायु को उत्पन्न कर के प्रकट किया । इन सब तत्वों में से छः शक्तिशाली सूक्ष्म तत्वों अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध एवं अहंकार के सूक्ष्म अवयवों को उन्हीं के अंशों अर्थात् कारणों से मिला कर सब पाँचों सूक्ष्म महाभूतों-आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी की सृष्टि की ।

तब जगत् के तत्वों की सृष्टि होने पर अपने-अपने कर्मों के साथ शक्तिशाली सभी सूक्ष्म महाभूत और समस्त सूक्ष्म अवयवों अर्थात् इन्द्रिय आदि के साथ 'मन' के साथ सब भौतिक प्राणि शरीरों की रचना होती है । पश्चात् उन शरीरों को जीवित रूप देने के लिये उन के साथ अविनाशी सूक्ष्म आत्मा का संयोग होता है । जीवात्माओं के संयोग से ही समस्त भौतिक शरीरों में चेतना आती है और आत्मा और शरीर के बिछुड़ने से शरीर की चेतना समाप्त अर्थात् मृत्यु हो जाती है ।

सृष्टि रचना के कुल पच्चीस तत्वों में पहला तो निमित्त कारण रूप परमेश्वर है शेष चौबीस क्रम से इस प्रकार हैं - प्रकृति,

thearyasamaj.org

महत्तत्व, बुद्धि, अहंकार, पांच तन्मात्रा से दस इन्द्रियां और ग्यारहवां मन, पाँच तन्मात्रों से उत्पन्न पाँच पृथ्वी, जल, आकाश आदि भूत और चौबीसवां पुरुष ।

अति संक्षेप में कहें तो अविनाशी परमात्मा निमित कारण बन कर और अविनाशी प्रकृति उपादान कारण बन कर कार्य रूप जगत् उत्पन्न करते हैं । प्रकृति से महाक्तिशाली महत्तत्व, फिर अहंकार और पाँच तन्मात्राओं के जगत् के पदार्थों का निर्माण करने वाले, सूक्ष्म विकारी अंशों से यह दृश्यमान विकारशील और विनाशशील जगत् उत्पन्न होता है ।

सृष्टि उत्पत्ति के विषय में बहुत भ्रम मूलक विचार भी दिये जाते रहे हैं । वाममार्गी और नास्तिक सृष्टि को अनादि मानते हैं । उनके अनुसार न कभी किसी ने इस का सृजन किया और न ही कभी इस का विनाश होगा । यह कोरी बुद्धिहीनता की बात है । सृष्टि में उत्पत्ति-विनाश, जीवन-मरण के दृष्टान्त हम नित्य प्रति देखते हैं। यह बात ज्ञान और विज्ञान द्वारा प्रमाणित है कि जो पदार्थ सूक्ष्म तत्वों के संयोग से बनते हैं वे निश्चित विघटित होकर उन्हीं मूल तत्वों में मिल जायेंगे । यह विकारी सृष्टि भी अन्ततः अवश्य प्रलय को प्राप्त होगी । प्रकृति जो सृष्टि की जननी कही जा सकती है, उसी में सृष्टि अवस्थान्तरण के पश्चात् विलीन हो कर अदृश्य रूप हो जाती है ।

कुछ लोग तर्क देते है कि प्रकृति के तत्व स्वभाव से ही संयुक्त हो कर सृष्टि की रचना करते है इसका उत्पत्ति कर्ता कोई नहीं। महर्षि इस शंका का समाधान करते हुए लिखते हैं, "यदि स्वभाव से ही जगत् उत्पन्न होता हो तो इस भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल

thearyasamaj.org

यथा सूर्य, चन्द्र आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते ? जिन-जिन पदार्थों के संयोग से जो वस्तु बनती है वे स्वयं चल कर एक दूसरे के पास जा कर उपयुक्त मात्रा में मिल कर पदार्थ का निमार्ण नहीं कर सकते ? पहले योजना, फिर पुरुषार्थ अर्थात् ज्ञान और कर्म से ही कार्य सिद्धि सम्भव है । महर्षि लिखते हैं, "जो स्वभाव से जगत् की उत्पत्ति हो तो विनाश कभी न हो । और जो विनाश भी स्वभाव से हो तो उत्पत्ति न होगी । और यदि दोनों स्वभाव युगपत् द्रव्यों में मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी ।"

जैन और बौद्ध अभाव और शून्य से ही जगत् की उत्पत्ति मानते हैं और अन्तिम सत्य भी अभाव और शून्य को ही मानते है। यह धारणा असत्य और निराधार है । क्योंकि जिसका अभाव है अर्थात जो वर्तमान नहीं है उस का भाव वर्तमान हो किसी तरह से बुद्धि संगत नहीं । गीता में भी लिखा है ।

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोइन्तस्तत्व दर्शिभिः ॥

कभी 'असत्' का भाव वर्तमान और 'सत्' का अभाव अवर्तमान नहीं होता ।

ऋषि कहते है, "जो कोई कारण के बिना सृष्टि मानता है, वह कुछ भी नहीं जानता है ।"

अब यह तथ्य स्थापित हो चुका है कि जगत् की उत्पत्ति और प्रलय होती है और इसका निमित्त कारण परमेश्वर और उपादान कारण प्रकृति है । अब जिज्ञासा बचती है कि सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय के बीच का काल परिमाण कितना है और प्रलय काल कितना है । वेदों के अनुसार सृष्टि उत्पत्ति के पश्चात् चार अरब बत्तीस

करोड़ वर्षो के बाद प्रलय होती है और इतने ही समय पश्चात् परमेश्वर इसे पुनः निर्मित्त करता है। वर्तमान सृष्टि को निर्मित हुए लगभग एक अरब छयानवे करोड़ वर्ष हो चुके है । सृष्टि और प्रलय क्रम से चलते रहते हैं । इस क्रम का कोई आदि या अन्त नहीं है अंतः हम जगत् को प्रवाह से अनादि कहते हैं ।

सृष्टि के विस्तार और इस के ग्रहों और उपग्रहों की संख्या के सम्बन्ध में वैज्ञानिक अभी तक अन्धकार में है। **अभी तक छत्तीस के आगे उन्नीस के शून्य लगायें, हतने संक्ष्या में पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, आदि लोकों का अनुमान हो चुका है।** कुल लोक कितने हैं इस का ज्ञान सर्वज्ञ परमेश्वर को ही है, जीवों की ज्ञान सीमा के बाहर है।

अन्तिम जिज्ञासा बचती है कि असीम विस्तारवाले और असंख्य ग्रहों वाले इस ब्रह्माण्ड का धारणकर्त्ता कौन है ? कितनी ही भ्रामक कल्पनाओं के निर्मूल सिद्ध होने के पश्चात् वेद वचनों पर ही विश्वास जमता है ।

"सत्यनोत्तेभिता भूमिः"॥

(यह ऋग्वेद का वचन है)

(सत्य) अर्थात जो त्रैकाल्याबाध्य, जिस का कभी नाश नहीं होता, उस परमेश्वर ने भूमि आदि सब लोकों को धारण किया है ।

"उक्षा दाधार पृथिवी मुत द्याम्"॥

(यह भी ऋग्वेद का वचन है)

उक्षा शब्द को लेकर ही किसी ने बैल वाली धारणा बनाई होगी । क्योंकि उक्षा बैल का भी नाम है । परन्तु साधारण बुद्धि का व्यक्ति भी समझ सकता है कि बैल में सृष्टि अथवा पृथ्वी धारण करने

का सामर्थ्य नहीं हो सकता। ऊक्षा सूर्य का भी नाम है। उस ने अपने आकर्षण से पृथ्वी धारण की है। परन्तु सूर्यादि का धारण करने वाला बिना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं हो सकता।

"विभुः प्रजासु" (यजुर्वेद)

बह परमात्मा सब प्रजाओं में व्याप्त होकर सब का धारण कर रहा है। सृष्टि का विस्तार अनन्त नहीं हो सकता क्यों कि आकार वाली वस्तु का ओर-छोर अवश्य होता है। यह सान्त कहें तो सीमावर्ती ग्रहों को किस का आकर्षण धारण कर रहा है। अतः सब जगत का धारण और आकर्षण कर्ता परमेश्वर ही है।

"स दाधार, पृथिवीं द्यामुतेमाम् ॥ (यजुर्वेद)

पृथ्वी आदि प्रकाश रहित लोक-लोकान्तर और पदार्थ तथा सूर्यादि प्रकाश सहित लोक और परलोक का रचन-धारण वही परमात्मा करता है।

जैसे आनन्त आकाश की तुलना में बड़े-बड़े भूगोल कुछ भी नहीं या समुद्र की तुलना में जल के छोटे छोटे कण कुछ परिमाण नहीं रखते वैसे ही अनन्त परमेश्वर के सामने असंख्यात लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं है। इसी लिये परमेश्वर का नाम हिरण्यगर्भ है।

वेदोत्पत्ति — वेद भारतीय संस्कृति के प्राण तत्व हैं। आर्य मेधा ने यह मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया है कि भारतीय धर्म, दर्शन, अध्यात्म, आचार-विचार, रीति-नीति, विज्ञान-कला से सभी वेदों से अनुप्रणित हैं। जीवन और साहित्य की कोई विद्या ऐसी नही है जिसका बीज-तत्व वैदिक वाङ्मय में न मिले। समष्टि रूप से समग्र आर्य साहित्य, जन जीवन एवं सभ्यता की आधार भूमि यदि वेदों में ही तलाशी जाये, तो निःसंदेह वहीं मिलेगी।

thearyasamaj.org

वेद का अर्थ है ज्ञान और ज्ञान वह प्रकाश है जो मनुष्य के मन-मस्तिष्क में छाए हुए अविद्या अंधकार को दूर कर के एक दिव्य आलोक प्रकाशित करता है। सृष्टि की उत्पति के साथ ही जीवन-यात्री मानव के मार्ग-दर्शन और कल्याण के लिये जो ज्ञान का प्रकाश परमेश्वर ने दिया उसी का नाम वेद है । निरूक्त की दृष्टि से ज्ञानार्थक विद् धातु के साथ घञ अथवा अच् प्रत्यय का योग होने पर वेद शब्द बनता है ।

सामान्य दृष्टि से देखें तो वेद अन्य ग्रन्थों की भांति ही दिखाई देते हैं । अन्य ग्रन्थों से वेदों की समानतायें निम्न प्रकार से हैं :-

१. वेद भी अन्य ग्रन्थों की भांति अपने विषयों का प्रतिपादन वाक्य समूह द्वारा करते हैं ।

२. जैसे अन्य ग्रन्थ कागज पर छापे या लिखे जाते हैं वैसे ही आज की वेद् पुस्तकें भी बनती हैं ।

परन्तु यह समानतायें केवल पुस्तक के शरीर से सम्बन्ध रखती हैं । पुस्तकों की आत्माओं में झांकें तो वास्तविक्ता स्पष्ट समझ आयेगी ।

अन्य ग्रन्थों के वाक्य और ज्ञान अनित्य हैं। कुछ समय बाद उन का महत्त्व या तो नगण्य हो जाता है या अनाकर्षक हो जाता है। इस के विपरीत वेद सृष्टिोत्पत्ति से अब तक विद्वानों का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं और भाषा भी अपना आकर्षण बनाये हुए है वेद ज्ञान नित्य है । एक भी वेद मन्त्र का ज्ञान अरबों वर्षों में भी अभी तक असत्य सिद्ध नहीं हुआ । वेद ब्रह्म वाणी हैं जबकि अन्य पुस्तकें अस्थिर विचारों वाले मानव की लिखी हुई हैं ।

मनु और अन्य मनीषियों ने वेदों को अपौरुषेय कहा है अर्थात्

thearyasamaj.org

किसी मानव द्वारा रचित नहीं । वेदों द्वारा ही सृष्टि की समस्त वस्तुओं, धर्मों और विज्ञान विषयों का प्रथम ज्ञान मानव को हुआ। वेदों को सभी विद्याओं का भण्डार कहा है क्यों कि धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, कर्तव्य-अकर्तव्य, आदि सभी विषयों पर विचार भिन्नता में आज भी वेद प्रमाण माने जाते हैं ।

वेदों को ईश्वर कृत और नित्य कहने के पक्ष में अनेक सत्य तर्क हैं ।

१. जैसे ईश्वर सर्वविद्याविद्, शुद्ध गुण-कर्म-स्वभाव, न्यायकारी, दयालु और उत्तम गुणों वाला है वैसे ही जिस ग्रन्थ में ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुरूप वचन हों, वह ईश्वर कृत्त ही है ।

२. जिस ग्रन्थ में सृष्टि क्रम, प्रत्यक्ष प्रमाण व आप्त पवित्रात्माओं के व्यवहार के विरुद्ध कथन न हों, उसे ईश्वरीय मानना ही उचित है ।

३. जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान, वैसा जिस ग्रन्थ में भ्रान्ति-रहित ज्ञान हो उस पुस्तक के ज्ञान को ईश्वरीय मानना चाहिये ।

४. जिस पुस्तक, में परमेश्वर, सृष्टिोत्पत्ति, जीवोत्पत्ति जैसे गूढ़ विषयों को बहुत सरल और भ्रम रहित ढ़ंग से स्पष्ट किया हो वह अवश्य ही ईश्वर कृत्त है क्यों कि ये विषय मानव बुद्धि से परे हैं ।

५. जो पुस्तक सार्वभौम हो और जो सम्पूर्ण प्राणिमात्र के कल्याण का उपदेश करे । जिसमें विचारों की संकीर्णता न हो । जो किसी वर्ग विशेष के हितों को बढ़ावा न दे । जिसमें तत्कालीन या पूर्वकाल के राजाओं का गुण गान न हो वह निश्चित रूप

thearyasamaj.org

से मानव कृत नहीं अपितु ईश्वरोक्त है । वेद उत्पत्ति विषय पर अभी तक हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वेद अन्य पुस्तकों की तरह सामयिक ग्रन्थ नहीं अपितु नित्य हैं । वेद मानव कृत न हो कर ईश्वरोक्त हैं । अब कुछ शंकालू जन आपत्ति करते हैं कि निराकारु परमेश्वर ने बिना नेत्रों और हाथों के इतना महान् ग्रन्थ कैसे रच दिया ।

यह शंका भी निर्मूल है । परमात्मा ने वेद ज्ञान लिख कर या बोल कर नहीं दिया । उसको ऐसा करने की आवश्यक्ता ही नहीं थी। परमेश्वर ने अन्तर्यामी रूप में जीवों के कल्याण हेतु समाधिस्थ चार ऋषियों की आत्मा में स्थित हो कर सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश किया। जिन्होंने यह ज्ञान परम विद्वान ब्रह्मा को दिया । ब्रह्मा ने अपने एक-एक बेटे को वेद मन्त्रों को खण्डशः कण्ठस्थ कराया । यही परिपाटी आगे भी चलती रही । इस प्रकार वेद करोड़ों वर्ष तक श्रुति रूप में सुरक्षित रहे । लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व महर्षि कृष्णद्विपायन (वेदव्यास) ने वेदों को चार खण्डों में विभाजित कर पुस्तक रूप दिया । ऐसा भी माना जाता है राजा ईक्ष्वाकु के काल में वे पुस्तक रूप में आये ।

एक शंका यह भी उठाई जाती है कि जैसे आज मनुष्य ज्ञान का सृजन कर रहा है वैसा ही प्राचीन काल में ऋषियों ने किया हो। वेदों को ईश्वरोक्त मानना मनुष्य की बुद्धि का तिरस्कार करने जैसा है मनुष्य स्वयं हर प्रकार का ज्ञान सृजन करने में समर्थ है ।

इस विषय पर महर्षि कहते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भिक काल में मनुष्य अपने आप ही विद्वान नहीं हो सकता था। विद्वान होने के लिये शिक्षक या उपदेशक से ज्ञान लेना परमआवश्यक है । ऐसे ही ऋषियों की आत्माओं में ईश्वर द्वारा ज्ञान का प्रकाश करने से उन

का विवेक जागृत हुआ । यदि ईश्वर यह उपकार न करता तो उन की प्रजा अविद्या अंधकार में भटकती रहती ।

अब वेदों की उत्पत्ति के विषय में शास्त्रों को उद्धृत करेंगे,

शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ में सूत्र है :–

"अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः"॥

प्रथम अर्थात सृष्टि के आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु आदित्य, अंगिरा ऋषियों की आत्माओं में एक एक वेद का प्रकाश किया ।

उपनिषदों ने, ईश्वर द्वारा वेदों का प्रकाश ब्रह्मा की आत्मा में किया गया, ऐसा माना है ब्रह्मा जी ने यह ज्ञान अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों को दिया ।

परमेश्वर ने वेद ज्ञान पहले ऋषियों को दिया या ब्रह्मा को दिया यह विवाद का विषय नहीं होना चाहिये। यह निश्चित है कि वेदज्ञान ईश्वरीय ज्ञान है । फिर भी इस मत भिन्नता के सम्बन्ध में हम मनुस्मृति को अकाट्य प्रमाण मानते हुए उद्धृत करते हैं –

"अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञ सिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम् ॥"

जिस परमात्मा ने आदि सृष्टि में मनुष्यों को उत्पन्न करके अग्नि, वायु और आदित्य, अंगिरा आदि चारों ऋषियों के द्वारा चारों वेद ब्रह्मा को प्राप्त कराये अर्थात् उस ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा से ऋग्, यजुः साम और अथर्ववेद को ग्रहण किया ।

एक बेतुकी सी शङ्का यह भी व्यक्त की जाती हे कि परमेश्वर ने वेदज्ञान का प्रकाश इन्हीं चारों ऋषियों की आत्माओं में क्यों किया अन्यों को क्यों वञ्चित किया ।

महर्षि शङ्का का समाधान करते हुए लिखते हैं कि ये चार ही सब जीवों में अधिक पवित्रात्मा थे, अन्य उनके सदृश नहीं थे । इसलिये पवित्र विद्या का उन्हीं में प्रकाश किया और उन्हीं को वेद मन्त्रों का अर्थ जनाया ।

कुछ लोग इस सम्बन्ध में पक्षपात का आरोप लगाते हुए कहते हैं कि वेद संस्कृत भाषा में ही ईश्वर ने प्रकाशित क्यों किये, अन्य भाषाओं में क्यों नहीं ? इस सम्बन्ध में यह जानना चाहिए कि उस समय संसार में और कोई विकसित भाषा नहीं थी । ऋषि-मुनियों की यही भाषा थी जिससे अन्य भाषाएं वाद में विकास को प्राप्त हुई। वेदार्थ ऋषिगण् समाधि अवस्था में जाकर परमेश्वर से प्रकाश रूप में प्राप्त कर लेते थे । अन्य लोगों और अन्य भाषाओं में अभी यह योग्यता नहीं आई थी । संस्कृत ईश्वरीय भाषा है, पूर्ण भाषा है और इसे सीखने के लिए सब मनुष्यों को एक जैसा परिश्रम करना पड़ता है ।

वेदों की उत्पत्ति कब हुई ? इस सम्बन्ध में निःसंदेह होकर मानना चाहिए कि वेद नित्य है, ब्रह्म ज्ञान हैं । वेदों का आविर्भाव सृष्टित्पत्ति के साथ ही हुआ । प्रलय आने पर ज्ञान का विनाश नहीं होता अपितु लोप हो जाता है और नव सृष्टि निर्माण के साथ ही पुनः उदय हो जाता है । वर्त्तमान वेद वर्त्तमान सृष्टि के साथ ही एक अरब छानवे करोड़ आठ लाख, तरेपन हजार एक सौ छः वर्ष पूर्व उदय हुए ऐसा माना जाता है । सृष्टि उत्पत्ति व वेद उत्पत्ति प्रवाह से अनादि हैं । प्रथम सृष्टि कब हुई ? यह प्रश्न करना उचित नहीं ।

thearyasamaj.org

मतमतान्तरों की उत्पत्ति

सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही परमपिता परमात्मा ने मनुष्य को धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, कर्तव्य-अकर्तव्य आदि का विवेक देने के लिये सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार के रूप में वेद प्रकाशित किये। वेद सभी सत्य विद्याओं के मूल स्रोत हैं ऐसा सभी विद्वान एक मत से मानते हैं और आज से पाँच हजार वर्ष पूर्व तक मानव के धर्म और सत्य सम्बन्धी सब मत-भेदों का निर्णय वेदों के आदेश अनुसार ही होता आया है ।

परन्तु विद्वान कभी किसी भी विषय पर एक मत होकर अधिक समय तक नहीं चल सकते । क्योंकि एक तो उनका ज्ञान अपूर्ण होता है और उसमें संशोधन की अनेक सम्भावनायें रहती हैं। दूसरा, विद्वानों की एक दुर्बलता उनका दम्भ है जो उन्हें विवेकशील होते हुए भी हठधर्मी और संकीर्ण बना देता है । तीसरा, बुद्धिमान लोग भेड़ों की भांति दूसरों का अनुगमन करने को बुद्धिहीनता का लक्षण मानते हैं और इस कारण हर कोई मनुष्य जीवन का एक ही प्रयोजन मानते हुए भी नई राह तलाशने में अपनी महत्ता समझता है और इस एषणा का संवरण नहीं कर सकता । चौथा, मनुष्य प्रकृति से ही परिवर्तन प्रिय है । उसकी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ और सोच निरन्तर बदलती रहती हैं अन्यथा वह स्वयं बदल जाने का प्रयास करने लगता है ।

मत वैभिन्य और मत-मतान्तरवाद में एक अति सूक्ष्म परन्तु घातक अन्तर है जिसे समझना आवश्यक है । सैधान्तिक मतवैभिन्य तो विद्वानों और मनीषियों में सदा से रहा है, रहेगा और रहना

thearyasamaj.org

चाहिये। यह एक सकारात्मक प्रवृत्ति है क्योंकि ऐसे मत-भेद बौधिक, अध्यात्मिक और सामाजिक विकास में सहायक होते हैं। ऐसा मतवैभिन्य शास्त्रार्थ द्वारा वेदमत को निर्णायक मानकर सुलझ जाता है।

परन्तु मत-मतान्तरवाद व्यक्ति और समाज को अधोगति के गर्त में डालते हैं। व्यक्ति की वृत्तियां उदार न रहकर संकीर्ण होने लगती हैं। फूट के बीज फूटने लगते हैं। अपने मत के प्रति राग और अन्य मतों से द्वेष के नकारात्मक भाव बुद्धि भ्रष्ट करने लगते हैं। इन मत-मतान्तरों के चलन से सामान्यजन छोटे-छोटे समूहों में विभक्त हो जाते हैं और अन्धविश्वासों कुप्रथाओं में ग्रस्त होकर असमंजस की स्थिति में भटकते हैं और गुरुओं की शरण में शान्ति ढूंढते हैं। इसी ऊहा-पोह में उनकी अपनी बुद्धि का क्षय होने लगता है और गुरु ही उनके सब क्रिया-कलापों को नियन्त्रित करने लगते हैं। इससे शोषण का एक अध्याय उनके जीवन में प्रारम्भ हो जाता है।

महाभारत काल से पूर्व तक सामाजिक जीवन में वर्ण व्यवस्था और व्यक्ति के जीवन में आश्रम व्यवस्था का दृढ़ श्रद्धा से पालन होता था। वर्ण व्यवस्था, जन्मना न होकर कर्मना थी। तब स्त्रियों और शूद्रों को विद्या प्राप्ति का उतना ही अधिकार था जितना ब्राह्मणों और अन्य वर्ण वालों को। इसीलिये उस काल में गार्गी, सीता, मैत्रेयी और अनुसूया जैसी महान् विद्यावान और तेजस्वी नारियां हुई और निम्न वर्ग में जन्म लेकर भी जाबाल, मातंग और जान श्रुति जैसे ऋषि हुए जिन्हें ब्राह्मणों और अन्य तथा कथित उच्च वर्णों ने समादरित किया।

उस काल में जब भी किसी विषय पर मत-वैभिन्य होता था तो राजा की उपस्थिति में विद्वित्-जन शास्त्रार्थ करते थे और जिस पक्ष का मत प्रबल रहता वह सब को मान्य होता था। फिर किसी प्रकार का द्वेषभाव नहीं रहता था। उस समय हर वर्ण के विद्वान को राजसभा में और समाज सभा में बहुत आदर सत्कार मिलता था। बुद्धि बल को शारीरिक बल पर अधिमान मिला था। उसी काल को देखते हुए चाणक्य शतक में लिखा है :-

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन। स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान सर्वत्र पूज्यते।।

वह युग, जब ब्राह्मण राज आश्रित नहीं थे और केवल वर्ग विशेष से सम्बन्धित नहीं थे, आर्यवर्त का सुवर्ण युग था। ब्राह्मणों को अथवा विद्वानों को समाज में शीर्षस्थ स्थान था और राजा और प्रजा दोनों वेदों और स्मृतियों के आदेशों और निर्देशों के अधीन चलते थे। राज और धर्म के सम्बन्ध में सभी निर्णय राजा, राजगुरु और राज सभा के अन्य विद्वान सदस्य परस्पर विचार विनिमय से करते थे।

"वेदों के प्रति अटूट श्रद्धा थी और श्रुति का मन्त्र कि, समाज के सभी घटक परस्पर पूर्ण सद्भाव रखते हुए प्रगति पथगामी हो" का दृढ़ता पूर्वक पालन होता था।

कालान्तर में वैदिक तत्व ज्ञान को नाना दृष्टियों से पल्लवित और पुष्पित करने तथा उसके बहुविध रूप को सरल ढंग से समझाने के अनेक प्रयास किए गए। उससे ब्राह्मण ग्रन्थ, दर्शन और उपनिषद् जैसे उत्तम शास्त्रों की रचना हुई। यह सभी ग्रन्थ साधारण जन को वेद ज्ञान सुलभ कराने में सहायक हुए। यह सभी ग्रन्थ वैदिक दर्शन

thearyasamaj.org

की ही व्याख्या करते हुए विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं परन्तु हैं सब वेदानुकूल । इनमें कपिल का सांख्य दर्शन हजारों वर्षों तक और आज भी मनीषियों के अनुशीलन का विषय बना हुआ है । कोई इसे वेदानुकूल कहते हैं और कोई अन्य वेद विरोधी । इस प्रकार हर विषय पर स्वतन्त्र विचार प्रकट करने का अधिकार सब विद्वानों को रहा ।

महाभारत काल आते-आते राज तन्त्र स्वेच्छाचारी और भ्रष्ट होने लगा । ब्राह्मण भी गुरुकुल आश्रमों से राज भवनों की ओर आने लगे । उच्च और उत्तम शिक्षा पर अधिकतर राज परिवारों का ही अधिकार रह गया । ब्राह्मण ज्ञान सुख के साथ-साथ सत्ता सुख भोगने की लालसा करने लगे । तभी तो द्रोणाचार्य व भारद्वाज आश्रम छोड़कर हस्तिनापुर के राज भवनों में रहने आ गये और कौरव और पाण्डव गुरुकुल में जाकर शिक्षा पाने की अपेक्षा राज भवनों में रहकर विद्या ग्रहण करते रहे । शान्तनु जैसे तेजस्वी राजा भी राज कार्य से विमुख होकर काम वासना में तमोगुण ग्रस्त हो गये। ऐश्वर्य का बाहुल्य होने से राजा और राज कुमार भ्रष्ट कर्मों में रूचि लेने लगे । राज भवनों में षड्यन्त्रों का खेल खेला जाने लगा था । हस्तिनापुर राज भवन में धृतराष्ट्र के संरक्षण में दुर्योधन, कर्ण, दुःशासन और शकुनि जैसे चाण्डालों की चौकड़ी मनमानी कर रही थी ।

सत्ता और विद्या में केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण की भागीदारी रह गई । अन्य वर्ण यथा वैश्य और शूद्र ब्राह्मणों और क्षत्रियों से हीन माने जाते थे और वे अपना तिरस्कार सहते हुए अपने वर्ण धर्म का पालन तो कर रहे थे पर अन्दर की घुटन विद्रोह का रूप लेने को भी छटपटा रही थी और वे जन्मना वर्ण व्यवस्था के

thearyasamaj.org

विरूद्ध खड़े होने के लिये उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

महाभारत युद्ध ने सम्पूर्ण विश्व को और विशेष रूप से आर्यवर्त की राज्य और सामाजिक व्यवस्था को हिलाकर रख दिया। सभी चक्रवर्ती सम्राट, महान योद्धा, प्रकाण्ड विद्वान् और सत्ता सुख भोग रहे राजगुरु, कुलगुरु और आचार्य सब युद्ध की भेंट चढ़ गये। केवल विधवाएं और अनाथ बच्चे ही बच सकें । इस प्रसंग में महर्षि लिखते हैं, "जब बड़े-बड़े विद्वान, राजा-महाराजा महाभारत युद्ध में मारे गये तो सब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला और बचे हुए लोग ईर्ष्या, द्वेष और अभिमान आपस में करने लगे । जो थोड़ा बलवान हुआ वह देश को दाब कर राजा बन बैठा । इस प्रकार आर्यवर्त देश खण्ड-खण्ड हो गया ।"

अभी तक हमने मत-मतान्तरों के आरम्भ से पहले का इतिहास और पृष्ठभूमि का विवरण लिखा है अब इस सब के परिणाम स्वरूप मत-मतान्तरों की उत्पत्ति पर दृष्टि डालते हैं ।

महाविनाशकारी युद्ध से ब्राह्मण वर्ग जहाँ सत्ता सुख से वंचित हुआ वहां समाज में भी उनकी पकड़ ढीली पड़ने लगी । एक कारण था कि अब ब्राह्मणों में अल्पज्ञ ही शेष बचे थे । दूसरा राजाश्रय अब नहीं रहा था और तीसरा वैश्य और शूद्र वर्णों का दबा हुआ आक्रोष अब फूटने लगा था । लोगों में नियन्त्रण ढीला पड़ने से उच्छृखंलता आ रही थी । ब्राह्मण अब समाज पर यथावत् पकड़ बनाने के लिये और आजीविका के लिये पाखण्डवाद पर उतर आये । अल्पज्ञ ब्राह्मणों ने श्रुतियों के अर्थों का अनर्थ करके अपनी प्रयोजन सिद्धि के उपाय आरम्भ कर दिये । आर्ष ग्रन्थों में प्रक्षेप करके ऐसे वाक्य डाले गये जिनसे ब्राह्मणों का प्रभुत्व बना रहे यथा -

thearyasamaj.org

१. ब्रह्मवाक्यम् जनार्दन ।

२. ब्राह्मणास्तु भूः देवाः ।

३. पदे विप्रस्थ दक्षिणे सर्वाणि तीर्थाणि ।

४. वैदिक हिंसा-हिंसा न भवति ।

इस प्रकार के भ्रमपूर्ण वाक्य फैलाकर लोगों को जड़ बुद्धि और अन्धविश्वासी बनाने का सतत् प्रयास हुआ। अपनी जीविका चलाने के लिये ब्राह्मणों ने व्रत, उपवास, प्रायश्चित, श्राद्ध और मूर्तिपूजा आदि मूर्खता पूर्ण कर्मों का विधान शास्त्रों में प्रक्षिप्त कर दिया और अशिक्षित यजमानों को किसी न किसी चक्र में डालकर लूटने की घटनायें होने लगीं । शास्त्रार्थ अब नहीं होता था अतः ब्राह्मण इन कुप्रथाओं का विरोध करने वालों को ब्रह्म विरोधी कह कर प्रायश्चित रूप में कठोर दण्ड देने लगे ।

इस भूमिका के पश्चात् अब मुख्य कारण लिखते हैं जिनसे मत-मतान्तर उत्पन्न होकर प्रचारित और प्रसारित हुए :-

१. जब राज तन्त्र दुर्बल होता है तो धर्म की आड़ में बहुत से प्रपञ्च खड़े हो जाते हैं । यजुर्वेद के रुद्राध्याय का आश्रय लेकर शिव, शंकर, नील, ग्रीव आदि शब्द पौराणिक शिव की कल्पना का आधार बने । इसी प्रकार वेदों में वर्णित ईश्वर के अनेक गौण नामों को भिन्न-भिन्न रूप से श्रद्धा के केन्द्र बना कर पाखण्ड मत खड़े कर दिये गये। राज सत्ता में वर्णित इन्द्र, अग्नि, सूर्य, शिव, विष्णु, ब्रह्मा, नारायण को भी ईश्वर प्रचारित करके उनके अलग-अलग मठ और मठाधीश खड़े हो गये । इनमें वैष्णव, शिव और शाक्त मुख्य मत थे । इन सबमें जटिल कर्मकाण्ड को वेदानुकूल बताकर ब्राह्मणों ने पुनः अपने साम्राज्य स्थापित कर लिये और खोया हुआ सम्मान और ऐश्वर्य नकारात्मक ढंग से प्राप्त कर लिया ।

thearyasamaj.org

कालान्तर में शैव और शाक्त मत की भ्रष्ट पूजा विधि और जटिल कर्मकाण्ड के कारण लोग इन मतों से विमुख हो गये । अनीश्वरवादियों ने यथा बृहस्पति, चारवाक आदि ने इन परिस्थितियों का लाभ उठाया और ईश्वर और वेद विरोधी मत खड़ा कर दिया। सभी विद्या विहीन और निम्नवर्ग का जन समूह नास्तिकवाद की ओर उमड़ पड़ा । ऐसे ही समय में बौद्ध और जैन मत का भी आविर्भाव हुआ । वे वाममार्ग के मांस, मदिरा आदि पांच मकारों से सहमत नहीं थे पर वे भी वेद की ज्ञान, कर्म और उपासना पद्धति के विरोधी थे। वाममार्ग के घृणित काम पोषक मार्ग से शीघ्र ही लोगों को वितृष्णा हो गई परन्तु बौद्ध और जैन मत आर्य राष्ट्र को बहुत समय तक दुर्बल बनाते रहे ।

२. मत-मतान्तरों के फैलने का दूसरा बड़ा कारण मूर्तिपूजा है । आर्य देश में बौद्ध जैनमत से पूर्व मूर्ति पूजा का प्रचलन नहीं था । वेदों और अन्य आर्ष ग्रन्थों में कहीं भी मूर्ति पूजा का उल्लेख नहीं है ।

सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व भी यूनान के अनेकानेक विद्वान भारत में आते रहते थे और बहुत से तो यहां की संस्कृति से प्रभावित होकर यहीं बस गये थे । भारत में मूर्तियों के प्रति आकर्षण यूनानियों द्वारा निर्मित सुन्दर मूर्तियों के कारण से हुआ । यूनानी इस कला में बहुत कुशल थे ।

बौद्ध और जैन निराकार ईश्वर को नहीं मानते थे पर अपने तीर्थाङ्कारों को परमपुरुष मानकर उनकी पूजा करते थे । इन मत वालों ने ही प्रथम बौद्ध और जैन मन्दिरों में महात्मा बुद्ध, पारसनाथ, महावीर और अन्य तीर्थाङ्कारों की मूर्तियाँ स्थापित कर उनकी

thearyasamaj.org

पूजा-अर्चना का पाखण्ड शुरु किया । विद्या विवेक का स्थान अविद्या और अन्धश्रद्धा ने ले लिया । विद्याहीन और उपेक्षित वर्ण इस सरल दिखने वाले मत की ओर आकर्षित हो गये ।

इस प्रकार पहली बार ईश्वर के सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक सत्ता से मुड़कर बौद्ध और जैनमत भारत में प्रसिद्धि पाने लगा । अल्पज्ञ भिक्षु समाज में समादरित होने लगे । भिक्षु और भिक्षुनियों के दल के दल वैदिक धर्म को पद-दलित करते हुए अनिश्वरवाद फैलाने लगे । वेदों और उपनिषदों की निन्दा होने लगी । हर एक तीर्थाङ्कर ईश्वर रूप में पूजा जाने लगा । बौद्ध और जैन विहार भोग-विलास के केन्द्र बन गये । अहिंसा ही परम धर्म हो गया । धर्म के शेष सभी पक्ष दूषित हो गये ।

इधर ब्राह्मण वर्ग के लिये आजीविका का संकट खड़ा हो गया । फिर तो पौराणिकों ने भी मूर्ति पूजा का आकर्षण देख कर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणपति, हनुमान, दुर्गा, काली, चामुण्डा आदि अनेकानेक देवी देवताओं की आकर्षक मूर्तियाँ बनवा छोटे बड़े मन्दिरों में स्थापित कर दी और इस वेद विरोधी पाखण्डवाद की होड़ में शामिल होकर नए-नए मत खड़े कर अपनी आजीविका का साधन किया ।

३. यूनानी इस देश से वेद और गणित ज्योतिष के अमूल्य ग्रन्थ ले गये और बदले में फलित ज्योतिष की पाखण्ड पूर्ण अविद्या फैला गये । वैदिक काल में ऐश्वर्य भोगने के अभ्यस्त हुए ब्राह्मण, जो अब समाज में अपना पहले वाला आदर और वैभव खो चुके थे, अब फलित ज्योतिष द्वारा बिना पुरुषार्थ के धन ऐंठने में लग गये । टेवा-पत्री, तन्त्र-मन्त्र, टोना-टोटका और शकुन-अपशकुन के भ्रम में डालकर मूढ़ लोगों को उल्लू बनाने लगे । इस प्रकार वैदिक ज्ञान

thearyasamaj.org

का स्थान अविद्या और अज्ञान ने ले लिया । भस्म, तिलक, कण्ठी, त्रिशूल, चिमटा और डमरू धारी भाण्डों और तान्त्रिकों ने अपने-अपने मत खड़े कर लिये । नित नये गुरु एक-आध छल पूर्ण चमत्कार का सहारा ले कर अपनी पूजा करवाने लगे । फलित ज्योतिष और चमत्कारवाद का धन्धा खूब चमका । नाथ पन्थ, गोकुलिये गुसाईं, स्वामी नारायण मत, साईं बाबा और अनेकों पीर-फकीर-औलिये, एक दूसरे से होड़ लगा कर नये-नये मत चमकाने लगे ।

विवाह प्रथा का खण्डन करने वाला व वेद निन्दक रजनीश, राधा-स्वामी, निरंकारी, ब्रह्मकुमारी आदि अनेकानेक मत अपना-अपना झण्डा उठा कर वैदिक संस्कृति को भ्रष्ट कर रहे हैं और अनन्त वैभव और सम्पत्ति के स्वामी बने बैठे हैं । आज निष्ठा हीनता इस सीमा तक बढ़ गई है कि हर कोई स्वामी, ब्रह्मचारी, महर्षि, आचार्य अथवा योगी का लेबल लगाकर अपनी पूजा करवा सकता है । नये-नये मत कुकर-मुत्तों की भांति उत्पन्न हो कर सामाजिक सौहार्द को बिगाड़ रहे हैं । मत-मतान्तरों के प्रसार रूप में यह विघटन दूरगामी परिणाम अपने गर्भ में छुपाये हुए हैं । यह वास्तव में आर्य राष्ट्र का दुर्भाग्य है ।

इन मत-मतान्तरों का विनाश कोई सरल काम नहीं है । जिस किसी ने मत-मतान्तरों के विरुद्ध पूरे राष्ट्र का आवाहन किया वही एक नया मत खड़ा करके चलता बना । शंकराचार्य ने बौद्धमत, जैनमत और अनीश्वरवाद के विरुद्ध एक उग्र अभियान चलाया । बौद्ध, जैन मत का पूर्ण उन्मूलन तो नहीं हुआ (बहुत सीमा तक हो गया) परन्तु साथ ही शंकर का अद्वैत मत (विवादित) खड़ा हो गया। महर्षि दयानन्द ने पूर्ण निष्ठा और शक्ति से सम्पूर्ण विश्व के सभी मतों को पक्षपात छोड़ सत्यमत को अपनाकर एकमत होने का

निमन्त्रण दिया । उनका सारा पुरुषार्थ तो विश्व बन्धुत्व उत्पन्न करके आपसी विरोध और विवाद मिटा कर एक सुखमय, शान्तिपूर्ण समाज खड़ा करने का था । एक हठी और संकीर्ण विचारधारा वाला समाज खड़ा करने का नहीं था । सामंजस्य बनाने के लिये उदार होकर कुछ ग्रहण करना और कुछ त्याग करना आवश्यक होता है। भटके हुओं को उत्तम पथ पर लाने के लिये स्वयं उनके लिये संवेदना और अपनेपन के भाव दिखाकर उन्हें अपनी ओर झुकाना पड़ता है। कोरी आलोचना और निन्दा से कुछ प्राप्त नहीं होता । स्वयं महर्षि ने कहा है, इसी मत-मतान्तर के विवाद से जगत् में जो-जो अनिष्ट फल हुए, होते हैं और होंगे उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं । जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मत-मतान्तरों का विरुद्धभाव न छूटेगा तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा । यदि हम सब और विशेष विद्विज्जन ईष्या द्वेष छोड़कर सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना-कराना चाहें तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है ।

महर्षि के प्रयास की जितनी स्तुति की जाये, थोड़ी है । उनके पुरुषार्थ के पीछे उनका विवेक, उनका स्वाध्याय, उनका त्याग और वैराग्य था । वे सब भेदभाव मिटाकर सत्य पथ पर सबको एक मत देखना चाहते थे परन्तु खेद इस बात का है कि लगभग सभी मतों के लोग अपने स्वार्थ, दम्भ, हठ, दुराग्रह और अविद्या अन्धकार से बाहर नहीं आ सके । और जैसा सदा होता आया है कोई महापुरुष अपने सद्प्रयोजन में सफल हो या न हो, उसके अनुयायी उसके नाम पर एक मत अवश्य खड़ा कर देते हैं और शनैः शनैः उस महापुरुष का मूल-प्रयोजन विस्मृत हो जाता है ।

मत-मतान्तरों के नाश हेतु जितना सतत् प्रयास महर्षि ने

किया उतना करने की अपेक्षा किसी एक व्यक्ति से नहीं की जा सकती । हमें इतिहास में उसके कारण तलाशने होंगे और उस पृष्ठ भूमि में भविष्य का मार्ग प्रशस्त करना होगा ।

रामायण काल में आर्य सभ्यता के विरुद्ध राक्षस सभ्यता बलशाली होकर ऋषियों-मुनियों को आतंकित कर रही थी । ऐसा नहीं कि विश्वामित्र, आगसत्य एवं अन्य ऋषियों ने उन राक्षसों को सत्य-पथ पर लाने का प्रयास न किया हो या कि उनके साथ सामंजस्य बिठाने के उपाय न किया हो । परन्तु दुर्मति को शान्ति प्रयास प्रभावित नहीं करते। उनसे प्रीति बिठाने का एक ही ढंग है उन्हें प्रतिआतंकित करो ।

विश्वामित्र, आगसत्य आदि मुनियों ने श्री राम के रूप में अपने सत्यबल के साथ बाहुबल को युक्त किया और राक्षस संस्कृति का दमन किया ।

महाभारत काल में दुर्योधन, कर्ण, शकुनि आदि असत्य और स्वार्थ के प्रतिनिधि थे । उनका दमन यदि केवल बौद्धिक ज्ञान देने से हो सकता तो महाभारत युद्ध क्यों होता । विदुर, भीष्म पितामह, **द्रोणाचार्य** (भले ही स्वयं भी स्वार्थी था) और कृष्ण ने क्या कम सत्यपक्ष के तर्क न दिये होंगे परन्तु एक तो स्वार्थ और दूसरा दम्भ, दुर्योधन को शास्त्रों की भाषा समझ नहीं आई । केवल बाणों और गदा की भाषा समझ में आई ।

महात्मा बुद्ध का बौद्धमत उनके ज्ञान और प्रवचनों से नहीं फैला । महाराज अशोक के राज तन्त्र के बल से फैला और तब तक रहा जब तक राज तन्त्र का संरक्षण उसे प्राप्त था ।

शंकराचार्य अतुलित विद्वान थे और उनका तर्क शास्त्र अकाट्य

thearyasamaj.org

था परन्तु बुद्ध और जैन मत तभी हिला जब शंकाचार्य ने उनके समर्थक राजे हिला दिये । सुधन्वा एवं अन्य बलशाली राजे पक्ष बदलकर आर्यमत की ओर झुक गये तभी शंकराचार्य जी का अभियान सफल हुआ । मुस्लिम मत मौलवियों और मुल्लाओं के ज्ञान और शास्त्रार्थ से नहीं फैला अपितु सत्ता के बल पर फैला । दुर्भाग्य से बाद में उन्हें अंग्रेजों के सरंक्षण ने जमा दिया । उपरोक्त सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि जब तक शास्त्र बल के पीछे शस्त्र बल न हो तब तक असत्य और अधर्म जिसका आधार स्वार्थ हो उसका नाश सम्भव नहीं । आज भी यदि सत्य धर्म स्थापित करना है तो शासन पक्ष अपनी प्रबल इच्छा शक्ति से काम करे, स्वार्थ का त्याग करे और सभी छोटे बड़े मतों के विद्वानों का शास्त्रार्थ करवाये । स्वयं पक्षपात रहित हो कर मध्यस्थता करे । जन-मानस को शास्त्रार्थ के परिणामों को स्वीकार करने के लिये तैयार करे, इसके लिये 'मीडिया' का भी पूर्ण सहयोग ले । **अध्यादेश जारी किये जायें और शास्त्रार्थ के न्यायपूर्ण नियमों को पूरे देश पर प्रभावी ढंग से लागू करें ।** इसके लिये चाहे बल का प्रयोग क्यों न करना पड़े । एक सावधानी आवश्यक है, शास्त्रादि को गुप्त न रखा जाये और उसमें प्रतिभागिता प्रतिबंधित न हो । सभी क्रिया पारदर्शी हो पर अन्त में दृढ़ इच्छा शक्ति दिखानी जरूरी है । कोई राजनैतिक स्वार्थ आड़े नहीं आना चाहिये ।

पूरे विश्व में जो सर्वधर्म सम्मलेन हो रहे हैं वे भी प्रभावहीन हो रहे हैं क्योंकि सब सुनते हैं कोई मानता नहीं और सत्य को मनवाने का अधिकार किसी के पास है नहीं । चाणक्य की भांति सरकण्डों की जड़े खोदनी होंगी अन्यथा उनकी तेज धार घायल करती रहेगी । ❁❁

ईश्वर का स्वरूप व उपकार

सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही, उस उत्पत्तिकर्ता (ईश्वर) के विषय में जानने की जिज्ञासा स्वभाविक रूप से मनुष्यों में रही होगी। इसी जिज्ञासा को शान्त करने के लिये परमेश्वर ने वेदों में अपने गुण-कर्म-स्वभाव का विवरण दिया है । पर मानव बुद्धि आज भी अंधेरे में टटोल-टटोल कर इस विषय पर नये-नये सूत्र पकड़ने का प्रयास कर रही है । उपनिषदों और गीता में उसी पार ब्रह्म का स्वरूप प्रकट करने का अद्‌भुत प्रयत्न किया गया है । बड़े-बड़े मनीषियों ने इस सम्बन्ध में अनुशीलन और गवेषणा की है । वे समुद्र में से उत्तम से उत्तम मोती तो निकाल पाये हैं पर सम्पूर्ण समुद्र का भेद नहीं खोल पाये । महा तपस्वी साधुओं ने समाधि अवस्था में परमेश्वर का साक्षात्कार कर परमानन्द की अवस्था तो प्राप्त कर ली पर वे उसके विषय में कुछ कह नहीं पाये । शायद ईश्वर का स्वरूप अकथनीय है । यह गूंगे के गुड़ की भांति सुखकारी और स्वादिष्ट तो अनुभव किया जा सकता है पर दूसरे को बताया नहीं जा सकता।

ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव और उसी अनुसार ईश्वर के आदेशों का सबसे पहला ज्ञान ईश्वर ने स्वयं वेदों के माध्यम से दिया है ।

१. हे मनुष्य । जो कुछ इस संसार में जगत् है, उस सब में जो व्याप्त होकर नियन्ता है, वह ईश्वर कहाता है ।

२. हे मनुष्यों । मैं ईश्वर सबके पूर्व विद्यमान सब जगत् का पति हूँ । मैं सनातन जगत कारण और सब धनों का विजय करने वाला और दाता हूँ ।

thearyasamaj.org

३. मैं परमेश्वर्यवान सूर्य के समान सब जगत् का प्रकाशक हूँ । कभी पराजय को प्राप्त नहीं होता और न कभी मृत्यु को प्राप्त होता हूँ ।

४. हे मनुष्यों । मैं सत्यभाषणादि रूप स्तुति करने वाले मनुष्य को सनातन ज्ञानादि धन को देता हूँ । मैं ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रकाश करने हारा हूँ ।

५. हे मुनष्यों । जो सृष्टि के पूर्व सब सूर्यादि तेज वाले लोकों का उत्पत्ति स्थान, आधार और जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा, उसका स्वामी मैं हूँ ।

६. मैं सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिान, पक्षपातरहित, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तिर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टिकर्ता, सृष्टिधर्ता, सृष्टिहर्ता और मोक्षदाता हूँ । ऐसा अब सभी आस्तिक लोग मानते हैं । परन्तु ये सभी गुण आठ प्रमाणों पर आधारित हैं । वास्तविक निरीक्षण, परीक्षण केवल भौतिक साकार पदार्थों का होता है निगुर्ण निराकार का नहीं । फिर भी इस दिशा में हम अपने विवेक से समझने का प्रयास कर सकते हैं ।

परमात्मा सत्-चित्-आनन्द स्वरूप है । ये तीनों परमात्मा के विशेषण नहीं हैं; क्यों कि यहां विशेषण और विशेष्य का भेद नहीं रहता । ये उन के गुण भी नहीं हैं क्यों कि परमात्मा में गुण और गुणी का अन्तर मिट जाता है। न ही ये उन के धर्म ही हैं क्योंकि उन में धर्म और धर्मी का भेद भी नहीं है ।

यह सत् चित् और आनन्द भिन्न-भिन्न वस्तुओं के द्योतक नहीं

हैं। जिस सत् को हम सत् कहते हैं वह सत् वास्तव में परमात्मा का स्वरूप नहीं है। क्योंकि परमात्मा का स्वरूप इस सत् से विलक्षण है। बुद्धि के द्वारा समझ में आने वाली सत्ता प्राकृतिक सत्ता है। बुद्धि जड़ है अतः वह प्रकृति के पदार्थों और उन की क्रिया-प्रतिक्रिया से आगे नहीं देख सकती । जो सत् हम देखते हैं परमात्मा का निर्विशेष स्वरूप भी है और उस से परे भी है जो केवल आत्मा से अनुभव किया जाता है ।

परमात्मा का स्वरूप केवल वह चेतन नहीं है जिसे हम समझते हैं । वह ब्रह्म ज्योतियों की भी ज्योति है; चेतन का भी चेतन है, आत्मा का आत्मा है। वह सब की आत्मा में स्थित है और केवल तत्त्व ज्ञान से जानने योग्य है । तत्व ज्ञान द्वारा जो परमात्मा का स्वरूप जानने में आता है वह बुद्धि विशिष्ट परमात्मा का स्वरूप है। निर्विशेष स्वरूप उस से विलक्षण है जिसे किसी प्रकार बुद्धि द्वारा जाना नहीं जा सकता ।

परमात्मा का आनन्द स्वरूप भी उस आनन्द से अत्यन्त विलक्षण है जिसे हम अविद्या के आवरण में आनन्द समझते हैं। बाहर के विषयों से आसक्ति रहित अन्तः करण वाला साधक आत्मा में स्थित जो ध्यानजनित सात्विक आनन्द है उस को प्राप्त होता है; तदनन्तर वह सच्चिदानन्द घन परब्रह्म परमात्मा के ध्यानरूप योग में अभिन्न भाव से स्थिर पुरुष अक्षय आनन्द (परमेश्वर) का अनुभव करता है। केवल असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में मुमुक्षु साधक उस अनन्त ब्रह्म के साक्षात्कार का आनन्द अनुभव कर सकता है पर वह उस आनन्द स्वरूप का वर्णन और के लिये नहीं कर सकता ।

महर्षि ने वेदों और दर्शनों का गहन अध्ययन कर के परमेश्वर की अनन्तता का वर्णन किया है। परमेश्वर परम सूक्ष्म है इसी लिये वह अति सूक्ष्म आत्मा में भी स्थित हो सकता है । संसार के सभी पदार्थों में परमात्मा अपने सूक्ष्म स्वरूप में विद्यमान रहता है । परमेश्वर का परिमाण इतना विशाल भी है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उस में एक अणु के समान समा रहा है ।

परमेश्वर सब जीवों की आत्मा में स्थित है इस को प्रमाणित करते हुए महर्षि लिखते हैं, "जब आत्मा, मन को और मन, इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता है अथवा चोरी आदि बुरी अथवा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है उस समय जीव की इच्छा ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाता है उसी समय आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, लज्जा, शंका आदि और अच्छी काम करते समय अभय, निःशङ्कता और आनन्दोंत्साह का भाव उठता है । वह जीवात्मा की ओर से नहीं अपितु परमात्मा की ओर से है ।"

ईश्वर ने ही अपने सामर्थ्य से उपादान कारण प्रकृति के सूक्षम तत्वों को स्थूल आकार दे कर सृष्टि की उत्पत्ति की। फिर उस का धारण-पोषण किया और उचित समय पर संहार भी किया । परमात्मा ही सम्पूर्ण सृष्टि का नियन्ता भी है । कार्य को देख कर कर्त्ता का और नियमों को देख कर नियन्ता का और सृष्टि को देख कर सृष्टा का अनुमान सहज ही हो जाता है। इतनी बड़ी सृष्टि का रचियता और नियन्ता कैसा है इस पर स्वामी जी ईश्वर के स्वरूप की रूप रेखा उस की गुण रूप शक्तियों के आधार पर करते हैं। "ईश्वर सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, अनादि, सब का स्रष्टा, धर्ता और संहर्ता है । वह

theaaryasamaj.org

सगुण-निगुण दोनों रूप हैं परन्तु उस का विशिष्ट आकार नहीं अर्थात् वह निराकार है ।"

ईश्वर के रूप का विवेचन करते हुए महर्षि तर्क देते हैं, "जो साकार होता है, वह व्यापक नहीं हो सकता । जब व्यापक न हो तो वह सर्वज्ञ भी नहीं हो सकता क्योंकि साकार वस्तु के गुण-कर्म-स्वभाव परिमित होते हैं । सर्वव्यापक न होने पर ईश्वर सर्वान्तरयामी कैसे हो सकता है । अतः यह निश्चित है कि ईश्वर निराकार, गुणातीत और परिमाण में बंधा हुआ नहीं है ।

जीव का मन, बुद्धि और चेतन शक्ति का मूल स्रोत वही है और ये सभी उस की जीवनधारा को लेकर ही जीवित और कार्यशील हैं। वह निरन्तर इन सब को देखता है तथा इन में शक्ति संचार करता रहता है। परन्तु **ये (जीव) उस को देख नहीं सकते इसी लिये वह अचिन्त्य स्वरूप है।** जीवों की बुद्धि द्वारा वह प्रत्यक्ष नहीं होता फिर भी वह स्वः प्रकाशमय है । वही सब ज्योतियों की ज्योति है, सब प्रकाश का प्रकाश है । सूर्य आदि सभी तारों का प्रकाश उसी से है। वह अपनी ज्ञानमयी अखण्ड दिव्य ज्योति से सदा सर्वदा सब की आत्माओं को प्रकाशित करता है । वह ज्ञानियों का ज्ञान है । वही तपस्वियों का तप है । ऐसा दिव्य, नित्य और अनन्त ज्ञानमय प्रकाश ही जिस का स्वरूप है उस में अविद्या या अज्ञान रूप तम की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

यह जो परमात्मा का **निर्विशेष स्वरूप** है, उस का तो वर्णन विधि या निषेध - किसी भी प्रकार से नहीं हो सकता, किन्तु फिर भी वेद और शास्त्र जिसे लक्ष्य कर जिस की गुण-लक्षणों सहित व्याख्या करते हैं, **उसे ध्येय बना कर मनुष्य साधन करता है, तो शाखाचन्द्रन्याय की** भांति वह उस परमात्मा को प्राप्त हो ही जाता

है । शाखाचन्द्रन्याय का अभिप्राय यह है कि द्वितीय का चन्द्रमा किसी एक को दीख गया और दूसरे किसी को दीखा नहीं । जिस को दीखता है वह पुरुष दूसरे को एक वृक्ष की शाखा को लक्ष्य करके यों समझाता है कि चन्द्रमा उस वृक्ष की अमुक शाखा से ठीक चार अंगुल ऊपर है । एक तीसरे आदमी को समझाता है कि चन्द्रमा उस मकान के कोने से सटा हुआ है। असल में विचार किया जाये तो दोनों ही बातें गलत हैं। किन्तु इस प्रणाली से मुमुक्षु को चन्द्र दर्शन तो हो ही जाते हैं। इसी प्रकार परमात्मा की प्राप्ति के लिये जितने साधन बतलाये गये हैं और परमात्मा का जो स्वरूप बतलाया गया है उस को लक्ष्य बना कर परमात्मा प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हुआ जा सकता है ।

वास्तविक्ता यह है कि उपरोक्त शब्दों द्वारा परमात्मा के **स्वरूप का जो चित्रण किया गया है परमात्मा उस से अत्यन्त विलक्षण है** क्यों कि जैसे पहले कह आये हैं परमात्मा के दिव्य स्वरूप को अनुभव किया जा सकता है, वाणी द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता ।

परमेश्वर के उपकार —

अनन्त सामर्थ्य और अनन्त गुण युक्त परमेश्वर के जीवों पर अनन्त उपकार हैं । उन उपकारों को लिखने के लिये धरती को पट और समुद्र को मसी बना लिया जाये तो भी शब्द कम पड़े। फिर भी मुख्य-मुख्य उपकार इस प्रकार हैं :—

१. घोर अंधकार रूप प्रकृति से परमेश्वर ने अपने संकल्प से सृष्टि को उत्पन्न किया। उस का धारण-पोषण किया और निश्चित अवधि के पश्चात् संहार भी किया और यह सृष्टि की उत्पत्ति और संहार का क्रम अनन्त काल से चला आ रहा है।

२. सृष्टि की जड़-चेतन पदार्थों से भव्यता बढ़ाई । जीवों को केवल उत्पन्न ही नहीं किया अपितु उन के भरण- पोषण के लिये नाना प्रकार के पदार्थ निस्वार्थ रूप से दान में दे दिये । स्वास्थ्य वर्धन और स्वास्थ्य रक्षण के लिये फल और औषधियाँ बनाई ।

३. जीव के शारीरिक भरण-पोषण के अतिरिक्त मन-बुद्धि और ज्ञान देकर कर्म करने की स्वतन्त्रता भी प्रदान की। मानव को सद्-मार्ग पर चलाने के लिये और पुरुषार्थ-चतुष्टय की सिद्धि के लिये वेद भगवान् का प्रकाश किया और धर्म स्थापित किया ।

४. सूर्य, चन्द्र आदि असंख्य नक्षत्रों का उदय किया । उन के द्वारा ब्रह्माण्ड की सज्जा की और उनको धारण कर के नियन्त्रित किया ।

५. सृष्टि के जीवन स्रोत रूप में प्रकाश, ताप, जल और वायु का अथाह भण्डार दिया । इनके बिना न उद्‌भिज हो सकते थे और न जलचर, थलचर और नभचरों का जीवन ही सम्भव था ।

६. जड़ और चेतन की अथवा स्थूल और चेतन की अद्‌भुत ग्रन्थि से अनुपम जीवों की रचना की । आश्चर्य होता है कि जिस मनुष्य शरीर को परमात्मा ने रच कर चेतनता और मन बुद्धि एवं विवेक दिया है वह मनुष्य करोड़ों वर्षों के स्वाध्याय और अनुसंधान से उस रचना का केवल अंश मात्र ही समझ पाया है । उस खोज को भी निर्भ्रम नहीं कह सकते क्योंकि उसमें नित नई शोध होती रहती है ।

महर्षि इस विषय पर लिखते है, "शरीर की इस प्रकार ज्ञानपूर्वक सृष्टि की है कि जिस को देख कर विद्वान लोग आश्चर्य चकित रह जाते हैं । भीतर हाडों के जोड़, नाड़ियों के बन्धन, मांस का लेपन, चमड़ी का ढ़क्कन, पलीहा, यकृत, फेफड़े पंखा कला का स्थापन, रुधिर और उस का शोधन, प्रचालन, विद्युत का स्थापन, जीव का संयोजन, शिरोरूप मूल रचन, लोम नख आदि का स्थापन, आंख की अतीव सूक्ष्म शिरा का तारवत् ग्रन्थन, इन्द्रियों के मार्गों का प्रकाशन, जीव के जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्था को भोगने के लिये स्थान विशेषों का निर्माण, सब धातु का विभागीकरण, कला-कौशल स्थापन आदि अद्‌भुत सृष्टि का निर्माण बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है ।"

८. मनुष्य शरीर तो उस पारंगत निर्माता की रचनाओं का केवल एक उदाहरण है । उसकी एक-एक रचना विस्मय में डालने वाली है। सूखे बीजों से अदभुत वनस्पतियां और हर वनस्पति गुण, रूप, आकार, फूल और फल में एक दूसरे से भिन्न। ऊपर से भौंडे परन्तु स्वभाव में हितकर और ऊपर से सुन्दर एवं आकर्षक परन्तु स्वभाव से विषैले । किस ने ऐसी रचनायें की और क्यों ? यह कौन समझ सकता है। हर रचना अपने भीतर एक हितकारी एवं कल्याणकारी भेद छुपाये है। यह सब उस प्रजापालक का खेल है । जितना गहराई में जा कर समझने का प्रयास करेंगें उतना ही उस परमेश्वर के विविध चमत्कारों से अभिभूत हो जायेंगे ।

९. परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से रची हुई सृष्टि को एक आकर्षण हीन पदार्थ की भांति नहीं छोड़ दिया अपितु इस का श्रृङ्गार

सूर्य-चन्द्र और अन्य तारों रूपी आभूषणों से किया, इसे दिन और रात जैसी उज्जवल और काली ओढ़नियां पहनाई, नदियों के हार पहनायें और पर्वत रूपी रत्नों से इस के शरीर की सज्जा की। ऋतुओं द्वारा इस की आरतियां उतरवाई। सभी कलाकार उस महान् कला की केवल नकल करने का प्रयास करते हैं।

१०. उस अथाह ज्ञान और विज्ञान के भण्डार ने काल-चक्र, वायु-चक्र, श्वास-चक्र, रूधिर चक्र द्वारा हर तत्व को नियन्त्रित किया और कल्याणकारी बनाया। यह सभी चक्र जीवन के लिये बहुत महत्त्व रखते हैं। काल चक्र में दिन और रात व ऋतु परिवर्तन के बिना जीवन कैसा होता यह सोच कर ही झुरझरी आ जाती है।

वायु चक्र में जहां वायु का दबाव सामान्य बना रहता है वही जीवनदायिनी वायु (आक्सीजन) और जीवन नाशक वायु (कार्बन डाईक्साईड) का उचित संतुलन बना रहता है।

इसी प्रकार सभी चक्र जिस महान वैज्ञानिक की बुद्धि की रचना हैं उसकी थाह पाना उतना ही असम्भव है जितना किसी क्षुद्र पक्षी के लिये पूरे आकाश की थाह पाना।

११. परमेश्वर सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है इसीलिये वह हर जीव के मन-बुद्धि की गति को पहले से जान लेता है। ईश्वर ने वेद रूप में मानव को उस का केवल धर्म समझा कर ही नहीं छोड़ दिया अपितु वह स्वयं भी प्रत्येक आत्मा में स्थित हो कर पल-पल उसे ऋत मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। मनुष्य जब दुष्ट कर्म करने की सोचता ही है तो परमात्मा उस

thearyasamaj.org

के मन में भय, शङ्का, लज्जा आदि भाव पैदा कर उसे रोकता है और उत्तम कर्म करते समय उत्साह, निर्भयता और आनन्द जैसे भावों से उसे प्रोत्साहित करता है। इस प्रकार परमेश्वर का मार्ग दर्शन हमें पग-पग पर मिलता है। यह उसका महत्त उपकार है ।

१२. हर प्रकार की विषम परिस्थितियों में वह मानव को सहारा देता है। जब अन्य सहायक स्वार्थवश या विवशता से हमें त्याग देते हैं तब भी वह सर्वसमर्थ हमारा सहारा बनता है। वह सदा युवा, सदा सशक्त आश्रय चाहने वालों को सदा आश्रय देता है । कभी निराश नहीं करता ।

१३. परमेश्वर पक्षपात रहित होकर मनुष्य के सभी पाप-पुण्य कर्मों का यथोचित फल देता है। वह निर्लेप रह कर न्याय करता है और कर्मों के अनुसार सुख-दुःख बांटता है। इस सम्बन्ध में उस का विधान अटल है इस कारण ब्रह्माण्ड की व्यवस्था उत्तम ढ़ंग से चल रही है। परमेश्वर के अटल न्याय विधान के आधार पर ही मानव ने अपना न्याय विधान निर्मित किया है ।

मनुष्य गिनता गिनता हार जाता है पर उसके उपकार गिनती में नहीं बन्धते । इसीलिये तो एक भजन में कहा है —

"किस ने जानी तेरी माया, किस ने भेद तिहारा पाया ।
हारे ऋषि-मुनि कर ध्यान, बना मन मन्दिर आलीशान ॥
तेरे पूजन को भगवान, बना मन मन्दिर आलीशान ।"

thearyasamaj.org

पुनर्जन्म

जीवों के पुनर्जन्म से पूर्व जीव के जन्म के विषय में जान लेना उपयोगी होगा । भौतिक तत्वों से शरीर की रचना करने के पश्चात् परमेश्वर उस का चेतन आत्मा से संयोग कराता है । अत: जीव में जड़ प्रकृति के तत्वों से निर्मित नश्वर शरीर के साथ अविनाशी आत्मा का संयोग निमित कारण परमात्मा कराता है । शरीर में समय के साथ अवस्थान्तर होने से इस की कुमार, युवा और वृद्ध अवस्थायें होती हैं परन्तु आत्मा चिर युवा अवस्था में रहती है । अन्ततः शरीर मरणावस्था को प्राप्त होता है तब आत्मा इस का त्याग ऐसे करती है जैसे हम पुराने वस्त्रों को त्यागते हैं । इस अन्तिम अवस्था में शरीर तो विनाश को प्राप्त हो जाता है परन्तु आत्मा के लिये ये पुराने शरीर के बन्धन से मुक्ति है और वह परमेश्वर के विधानानुरूप नया शरीर धारण करती है ।

जन्म और मरण के सम्बन्ध में यह धारणा वैदिक दर्शन द्वारा प्रतिपादित है । संसार के सभी प्रमुख सम्प्रदाय इस विचारधारा से सहमत हैं, परन्तु भारत में वृहस्पति, चारवाक आदि नास्तिक और संसार में वामपंथी शरीर से भिन्न आत्मा के अस्तित्व को मानते ही नहीं । उन के अनुसार भौतिक तत्वों का विशेष विद्या से संयोग स्वयं चेतन का सूत्रधार है जैसे मदिरा शरीर के तत्वों से मिलकर नशा उत्पन्न करती है ऐसे ही चेतनता भी भौतिक तत्वों की परस्पर रसायनिक क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम है। ऐसे भौतिकवादी भला पुनर्जन्म को कहां मानेंगे । उनके अनुसार पुनर्जन्म एक मिथ्या विश्वास है ।

इस प्रकार एक जन्मवादी और पुनर्जन्मवादी ये दो परस्पर विरोधी विचार धाराएं आदि काल से संसार में चलती आ रही हैं! उन के विरोध के मुख्य बिन्दु नीचे दिये जा रहे हैं ।

पुनर्जन्म वादी	एक जन्मवादी
१. शरीर और आत्मा को पृथक पृथक मानते हैं । शरीर को नाशवान और आत्मा को अनश्वर मानते हैं ।	१. केवल शरीर की सत्ता मानते हैं। चेतनता भौतिक तत्वों की एक विशेष विद्या से संयोग के कारण स्वतः मानते हैं ।
२. ईश्वर की सत्ता को मानते हैं जीव की उत्पत्ति में ईश्वर निमित्त कारण है ।	२. जीव की उत्पत्ति स्वाभाविक मानते हैं। इसमें या किसी भी सृष्टि रचना में ईश्वर की कल्पना को मिथ्या मानते हैं।
३. आत्मा (जीव) कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न योनियों में गमन करती है । कर्मफल ईश्वर द्वारा निर्धारित होता है और तदानुसार योनि मिलती है ।	३. कर्मफल के अनुरूप योनियों में आवागमन को नहीं मानते। योनियां विकासवाद के अनुसार बनी हैं । कर्मफल उसी योनि में भुगतना पड़ता है । मृत्यु के बाद सब कुछ समाप्त हो जाता है ।

पुनर्जन्म एक निर्भ्रान्त सत्य है । इसको सिद्ध करना नित्तान्त अनावश्यक है । सत्य को स्थापित करना आवश्यक नहीं क्यों कि यह नित्य, अनादि और अनन्त है । यह किसी की स्वीकृति की न अपेक्षा रखता है न समर्थन या संरक्षण की । सत्य की अपनी

thearyasamaj.org

निर्बाध सत्ता है । यह भारत के तत्त्व दर्शी और सर्वलोक गमन में समर्थ ऋषि-मुनियों के द्वारा अनुभूत और प्रत्यक्ष दृष्ट है ।

यद्यपि पुनर्जन्म के सत्य को किसी से मनवाने की अवश्यक्ता तो नहीं हैं तथापि वर्तमान अविश्वासी युग में पुनर्जन्म एवं कर्मफल न मानने के कारण बढ़ रहे स्वेच्छाचार तथा पाप प्रवाह को रोकने के लिये इस को सप्रमाण और तर्क की कसौटी पर कस कर लोगों के सामने रखना कल्याणकारक है ।

आज यदि विज्ञान इस सत्य को अनुभव और प्रमाणित करने में असमर्थ है तो वही (विज्ञान) अधूरा है । सत्य तो सत्य है। परामनोवैज्ञानिकों की भांति परीक्षण और शोध का विषय नहीं फिर भी शोध कार्य हो रहा है और उस के द्वारा उजागर किये तथ्य उत्साहजनक हैं ।

शास्त्र अध्ययन से जो तर्क और प्रमाण सामने आये हैं वे इस प्रकार हैं :–

१. "गतानुगति को लोकः"

जो पथ वेदों और अन्य आर्ष ग्रन्थों ने हमारे लिये निर्धारित किया है और जिस का अनुगमन करते हुए हमारे पूर्वजों और महापुरुषों ने कीर्ति पाई है वही हमारे लिये भी श्रेष्ठ है । सब आर्ष ग्रन्थों ने पुनर्जन्म को माना है ।

२. यदि कहें कि तर्क कि कसौटी पर कसे बिना परम्परागत ज्ञान को स्वीकार करना यह विद्वानों के लिये उचित नहीं तो पुनर्जन्म के दर्शन को तर्क-वितर्क, निजि अनुभव, लोक अनुभव और आठों प्रमाणों के आधार पर स्थापित किया जा सकता है ।

क) एक जन्मवादियों का प्रबल तर्क है कि जैसे जीव को अपने पुराने अनुभव कई वर्ष पश्चात् भी स्मरण रहते हैं वैसे ही यदि इस

जन्म से पूर्व उस का कोई जन्म रहा होता तो उसे उस की घटनाओं का कुछ तो स्मरण रहता । परन्तु हम देखते हैं कि किसी भी जीव को पिछले जन्म या किसी भी और जन्म का कुछ भी स्मरण नहीं होता।

प्रतिवादियों के इस तर्क का इस प्रकार निराकरण किया जा सकता है कि जीव का ज्ञान दो प्रकार का होता है –

स्वाभाविक और नैमित्तिक । स्वाभाविक ज्ञान नित्य रहता है जब कि नैमित्तिक ज्ञान काल, स्थान और परिस्थितियों के बदलने से नयून-अधिक होता रहता है । जैसे अग्नि का स्वाभाविक गुण दाह करना, जलाना या गर्म करना है । यह गुण उस के प्रत्येक परमाणु का बिना किसी अन्य पदार्थ की सहायता के है । यह उस का निज का गुण है जिसे वह चाह कर भी छोड़ नहीं सकता । इस गुण पर देश-काल के बदलाव से कोई प्रभाव नहीं पडता । परन्तु जल में जो उष्णता अग्नि के कारण से आती है वह दोनों के वियोग के पश्चात कम हो जाती है । जल में ऊष्णता का निमित्त कारण अग्नि है अतः ऊष्णता जल का स्वाभाविक गुण नहीं है अपितु नैमितिक गुण है जो उस अग्नि ने किया है । जल का अपना स्वाभाविक गुण शीतलता है जो सदा उसके साथ रहता है ।

इसी प्रकार जीव में "मैं हूँ" अर्थात् अस्तित्व का ज्ञान स्वाभाविक गुण है परन्तु ज्ञानेन्द्रियों अर्थात् श्रोत्र, चक्षु, घ्राण आदि के देश-काल और अन्य पदार्थों के साथ व्यापार से जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह नैमितिक ज्ञान है यह अन्तः करण पर क्रिया - प्रतिक्रिया द्वारा पड़े संस्कारों के कारण से होता है और ज्यों-ज्यों यह निमित्त दूर होते जाते हैं त्यों-त्यों नैमितिक ज्ञान धूमिल होते होते विलुप्त हो जाता है ।

इसी लिये पूर्व जन्म के नैमितिक ज्ञान का स्फुरण आत्मा को नहीं होता।

२. एकजन्मवादी या तो परमात्मा को मानते ही नहीं या उसे स्वेच्छाचारी और अन्यायकारी कह कर कोसते हैं। वे किसी प्रकार भी भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न सुख-दुःख का कारण समझ नहीं सकते इसी लिये न मानते हुए भी आस्तिकों के परमात्मा को दोष देकर अपने असमंजस्य को शान्त करते हैं। वे दृष्टान्त देते हैं कि एक ही परिवार के दो बालक, समान लाड-प्यार में पले और एक ही गुरु से शिक्षित हुए परन्तु एक बालक उत्तम धारण शक्ति होने से बड़ा विद्वान या अधिकारी बनता है और दूसरा आयु भर मूर्ख बना रहता है। इस बुद्धि भेद का जब कोई समाधान उनकी बुद्धि में नहीं आता तो वे उपरोक्त प्रतिक्रिया व्यक्त करते हैं। और इसे परमेश्वर का पक्षपात और अन्याय बताते हैं।

ऐसे लोगों की हठधर्मी के कारण ही उन की बुद्धि काम नहीं करती। वेद एवं सभी आर्ष ग्रन्थ इस बात की घोषणा करते हैं कि ईश्वर अपनी प्रजा का अर्थात् सम्पूर्ण जीव जगत का हित करता है और पक्षपात और अन्याय उस के गुण-कर्म-स्वभाव के सर्वथा विपरीत हैं। ऐसे में दोनों बालकों का एक जैसे पर्यावरण में पल कर भी बल-बुद्धि कौशल में एक जैसा न होना एक जटिल प्रश्न है जिसका कोई संतोषजनक समाधान नहीं मिलता। यह गुत्थी एक जन्मवादी किसी तर्क से सुलझा नहीं पाते फिर अपनी खीज परमात्मा पर उतारते हैं।

इस में केवल पूर्व जन्म के संचित कर्मफल का प्रभाव ही इस प्रश्न का उत्तर है। भिन्न-भिन्न योनियों में अथवा एक ही योनि के भिन्न-भिन्न जीवों की एक दूसरे से भिन्नता का समुचित उत्तर केवल

संचित कर्म फल अनुसार जन्म होने में मिलता है। इस को न मान कर हर समाधान और उलझाता है । अतः पुनर्जन्म का होना निश्चित है ।

३. उपरोक्त प्रमाणों के साथ एक प्रत्यक्ष प्रमाण भी है। जीव के चेष्टादि करने से पूर्व भी हमें उस के शरीर का प्रत्यक्ष हो जाता है। फिर उस में चेतना आती है अर्थात् आत्मा का संयोग हो जाता है जिस से भौतिक शरीर चेतन हो जाता है। फिर आत्मा पर संस्कार पड़ते है उस के पश्चात् स्मृति होती है। फिर शारीरिक और मानसिक क्रिया का विकास हो कर प्रवृति-निवृत्ति होती है। यह क्रम सर्वत्र अटल है। जब गर्भ से बाहर आते ही बच्चा श्वास लेने लगता है और रोने की ध्वनि करने लगता है तो यह प्रवृति उस के पूर्व संस्कार जनित ज्ञान के बिना कैसे होगी ? भूख लगने पर माता का स्तन पान करना और तृप्त होने पर स्वतः छोड़ देना यह ज्ञान उसे जन्मने के पश्चात नहीं दिया गया। स्पष्ट ही उसे इस का पूर्व अभ्यास स्वभाविक रूप से रहा होगा । माता के दुलार या गुस्से को समझ जाना भी इसी ओर संकेत करता है कि वह पूर्व जन्म से संस्कारों के रूप में ज्ञान ले कर ही वर्तमान जन्म में आया होगा। अन्यथा वह कितनी ही स्वाभाविक क्रियायें बिना सिखाये कैसे कर सकता था ।

४. जब सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का क्रम से होना प्रमाणित है और सृष्टि के अन्य पदार्थों का संगठन और विघटन हम प्रत्यक्ष देखते हैं। इन के सदृष्य ही जीव-सृष्टि का जन्म-मरण और पुनः जन्म होने में संदेह नहीं होना चाहिये। हमारा वर्तमान जन्म भी इसी क्रम का एक पड़ाव है । हमारे मोक्ष प्राप्ति तक कितने और किस योनि में जन्म होने हैं यह कोई बता नहीं सकता । परन्तु योग समाधि में जाने वाले पूर्व जन्म का अनुभव कर सकते हैं परम योगी श्री कृष्ण अर्जुन से इसी सम्बन्ध में कहते हैं —

thearyasamaj.org

योग समाधि से दिव्य दृष्टि मिलती है जिस से पूर्व जन्मों में झांका जा सकता है।

५. एक जन्मवादी आक्षेप लगाते हैं कि राजा पालकी में बैठता है और कहार पालकी उठाते हैं । इस से एक को सुख अधिक और दूसरों को दुःख अधिक पहुंचता है । परन्तु दूसरे दृष्टिकोण से राजकार्य के कारण राजा को मानसिक तनाव रूपी दुःख और कहार को निश्चिन्त शान्ति रूपी सुख मिलता है। इस प्रकार किसी को भी केवल सुख या केवल दुःख नहीं मिलता । अपने भाग्य का सुख-दुःख मिश्रित रूप से भोगते हैं ।

ऐसा कहना भी भ्रमपूर्ण है। राजाओं के पुत्र और भंगी के पुत्र में अन्तर देखो । एक को पैदा होने से बड़े होने तक सुख ही सुख और दूसरे के लिये सुखों का नित्तान्त अभाव अर्थात दुःख ही दुःख। मानव योनि ही नहीं; सब योनियों में दो जीवों के जीवन की विषमता क्या ईश्वर का अन्याय है ? यदि ऐसा नहीं तो इस विषमता का कारण कहां है? जन्म लेते ही राजा के पुत्र ने पुण्य और मंत्री के पुत्र ने पाप तो नहीं किये और परमात्मा का बिना कारण एक के साथ राग और दूसरे के साथ द्वेष भी नहीं है। जब कोई कारण प्रत्यक्ष रूप से इस विषमता का समाधान नहीं करता और बिना कारण कोई कार्य होता नहीं तो निश्चय ही यह उन के पूर्व जन्मों के कर्मों का संचित फल है जो उन्हें विषम परिस्थितियों में डालता है। हर जीव की हर दूसरे जीव से विषमता का समाधान सिवाय कर्म फल दर्शन के अन्य कोई बुद्धिगमय नहीं होता ।

६. एक जन्मवादी एक प्रमुख शंका यह भी रखते हैं कि यदि जन्म योनि और सुख अथवा दुःख पाप-पुण्य कर्मों के फल के ही परिणाम हैं तो आदि मानव को पाप-पुण्य का ज्ञान कैसे हुआ। इस का

thearyasamaj.org

समाधान यह है कि जीव सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही परमेश्वर ने वेद ज्ञान दे कर मनुष्यों का मार्ग दर्शन किया। वेद ज्ञान से ही पाप-पुण्य का भी निश्चय हुआ। उसी के अनुसार कर्मों का मूल्यांकण होने लगा । कर्म भेद के अनुसार जीव के आचरण में अन्तर आता गया । मोह-ममता, राग द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-आकांक्षा आदि वृत्तियां जीव के कर्मों को प्रभावित करने लगी । उत्तम और अधम कर्मों के करने से ही कर्म योनि के जीव पशु-पक्षी-वनस्पति आदि भोग योनियों में पड़ने लगे। अति उत्तम कर्मों के फल रूप मोक्ष प्राप्ति का विधान भी वेदों में दर्शाया गया। पाप कर्मों का फल भोगने पर दोबारा कर्मयोनि अर्थात मनुष्य योनि की प्राप्ति होने का प्रावधान भी ईश्वरीय विधान में रखा गया। इस प्रकार सृष्टि चक्र में कर्म फल अनुसार विभिन्न योनियों में आवागमन का क्रम चला।

७. यदि कोई कहे हर मनुष्य को, यह जानते हुए भी कि पाप का फल दुःख रूप है, पाप कर्म करने की वासना क्यों हुई तो इस का उत्तर है कि ईश्वर ने मनुष्य को कर्म विधान के साथ साथ विवेक दिया और ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां और मन दे कर कर्म करने की स्वतन्त्रता भी दी। मनुष्य के लिये श्रेय और प्रेय मार्ग भी खोल दिये गये । प्रेय मार्ग प्रिय लगने वाला इन्द्रिय सुख का मार्ग है जो परिणाम रूप में विष के समान दुःखदाई है जब कि श्रेय मार्ग इन्द्रियनिग्रह का मार्ग है । यह मर्यादा में रह कर सर्वकल्याण का मार्ग है । पुरुषार्थ चतुष्टय की सिद्धि श्रेय का मार्ग है । वर्तमान के शारीरिक सुख की इच्छा त्याग सकने वाले ही इस मार्ग पर चल सकते हैं । इस का परिणाम अमृत सदृश है। यही मोक्ष प्राप्ति की सीढ़ी है । जो इन्द्रिय सुखों का सवरण नहीं कर सकते ऐसे तमोगुणी और रजोगुणी मूढ़ पाप मार्ग पर चल कर फल स्वरूप निकृष्ट योनियों में गिर कर दुःसह

दुःख भोगते है। प्रकृति के तीनों गुण भी कर्म बुद्धि को प्रभावित करते हैं।

८. नवीन वेदान्ती और सूफी मत के अनुयायी ऐसा मानते हैं कि परमेश्वर परम दयालु है, इस लिये यदि पाप कर के पश्चाताप कर लिया जाये या परमेश्वर को स्तुति, प्रार्थना, उपासना से रिझा लिया जाये तो दीन बन्धु, दयालु परमेश्वर सभी पाप क्षमा कर के पापी को भी अपने चरणों में स्थान दे देते हैं ।

परन्तु वेद मन्त्रों में पाप क्षमा होने का कोई प्रावधान नहीं है। पाप का दण्ड और पुण्य का उत्तम फल निश्चित ही भोगना पड़ता है । पाप करने पर नीच योनि में जाना और पुण्य कर के मोक्ष या उत्तम योनि में जन्म मिलना अवश्यमभावी है । ईश्वर का पक्षपात रहित न्याय करना ही उस की दयालुता है ।

९. एक शंका यह भी व्यक्त की जाती है कि मनुष्य के अतिरिक्त अन्य जीव यथा पशु, पक्षी और पेड़-पौधे आदि पाप पुण्य के विषय में ज्ञान नहीं रखते तो उन के कर्मों का फल का निर्धारण कैसे होता है । इस सम्बन्ध में शास्त्रों में स्पष्ट विधान दिया गया है कि जीवों में मनुष्यों के अतिरिक्त सब भोग योनियां हैं केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि है । अतः केवल मनुष्य द्वारा किये गये कर्मों का फल मिलता है अन्य जीवों का नहीं । अन्य योनियां तो निकृष्ट कर्मी मनुष्य को फल भोगने के लिये बनी हैं ।

संक्षेप में यदि बहुजन्म न मानें तो परमेश्वर पर पक्षपात का आक्षेप आता है क्योंकि बिना पाप किये दारिद्रयादि आदि दुःख क्यों दिये ? बिना पूर्व संचित कर्म फल के ऐश्वर्य और समृद्धि क्यों दी? यदि कर्मफल दर्शन मानें तो पूर्व जन्म के कर्मों अनुसार दुःखसुख मिलने के जटिल प्रश्न का उचित समाधान हो जाता है और परमेश्वर

thearyasamaj.org

के न्याय पर भी आक्षेप नहीं लगता। यह सभी प्रमाण यह स्थापित करने के लिये प्रयाप्त हैं कि पुनर्जन्म होता है। ऐसा मानने से ही बहुत सी शंकाओं और भ्रमों से छुटकारा मिलता है। मनुष्य सुख रूप फल पाने के लिये और दुःखों से बचने के लिये श्रेष्ठ कर्म करता है, श्रेय मार्ग पर चलता है और संसार की व्यवस्था भी सर्व हितकारी ढंग से चल पाती है ।

१०. जीव शाश्वत अर्थात नित्य है और उस के कर्म भी प्रवाहरूप से नित्य हैं । कर्म और कर्मवान् का नित्य सम्बन्ध होता है । क्या वह जीव कहीं निकम्मा बैठा रहा था ? वा रहेगा ? और पुनर्जन्म न मानने वालों के अनुसार तो ईश्वर भी निकम्मा रहता है । पूर्वजन्म न मानने से **'कृतहानि'** और **'अकृत्याभ्यागम' 'नैर्ऋय और 'वैषम्य' दोष भी ईश्वर में आते हैं क्योंकि जन्म न हो तो पाप-पुण्य के फल-भोग की हानि हो जाये। क्यों कि जिस प्रकार दूसरे को सुख-दुःख, हानि-लाभ पहुंचाया होता है वैसा उस का फल बिना शरीर धारण किये नहीं होता। यदि पाप-पुण्य कर्मों का फल-योग न हो तो ईश्वर पर अन्यायकारी होने का दोष लगे अतः परमेश्वर की न्याय व्यवस्था में किये गये अच्छे या बुरे कर्मों का फल मोक्ष प्राप्ति के रूप में या उच्च या निकृष्ट योनि में शरीर धारण कर के भोगना ही पड़ेगा। पुनर्जन्म अविवाद तथ्य है ।**

अपवाद रूप में

११. कुछ बच्चों को पूर्वजन्म की घटनाओं का स्मरण रहना अथवा ५-७ वर्ष की आयु में ही गणितज्ञ, संगीतज्ञ होना भी पूर्वजन्म को सिद्ध करता है ।

◈◈◈◈◈

नास्तिक-आस्तिक कौन ?

महर्षि दयानन्द जी ने दस प्रकार के नास्तिक बताए हैं :-

१. वैदिक संस्कृति के अनुसार परमेश्वर की सत्ता, उस के अतुलित सामर्थ्य और उस के उपकारों को श्रद्धा और दृढ़ विश्वास के साथ मानने वाले को आस्तिक कहते हैं और उस के विपरीत विचारों वाले को नास्तिक कहते हैं ।

२. जो वेदों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानते, उस में दिये गए ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के प्रति संदेह का भाव रखते हैं। वेदों में दिये अनुसार ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना उपासना नहीं करते और वेदों को भी साधारण पुस्तकों जैसा मानव कृत मानते हैं वे घोर नास्तिक हैं ।

३. आदि तत्व तीन हैं । १. प्रकृति (केवल सत् भौतिक जड़ पदार्थ) २. जीव (जड़ और चेतन का समन्वय रूप सत् एवं चित्) ३. परमेश्वर (सत्, चित् और आनन्द इसी लिये परमेश्वर का एक नाम सच्चिदानन्द भी है) । सृष्टि रचना में प्रकृति उपादान कारण और परमेश्वर निमित्त कारण है। सृष्टि उत्पत्ति के इस वेद प्रतिपादित सत्य को जो मानते हैं वे आस्तिक हैं और जो इस ज्ञान के विपरीत सृष्टि की न उत्पत्ति है और न विनाश है अर्थात जो सृष्टि को ही अनादि मानते है, वे नास्तिक हैं। प्रकृति और ईश्वर का सृष्टि उत्पत्ति में किसी प्रकार का योगदान नहीं, ऐसा मानने वाले और अन्य जो सृष्टि उत्पत्ति को ईश्वर का दृष्टि विलास भर मानते हैं

thearyasamaj.org

और प्रकृति उपादान कारण है इस बात को नकारते हैं वे भी नास्तिक हैं ।

४. कुछ नास्तिक ऐसा मानते हैं कि केवल ब्रह्म ही सत्य और अनादि है शेष सभी पदार्थ अविद्या, अज्ञान अथवा माया के प्रभाव से सत्य प्रतीत होते हैं । वास्तव में सभी पदार्थ माया के भ्रम से सत्य लगते हैं वास्तव में हैं नहीं । इस के लिये वे स्वप्न में बसाये गये संसार की ओर संकेत करते हैं । जैसे जागते ही वह संसार लुप्त हो जाता है बैसे ही माया या अज्ञान के हटाने पर इस सत्य दिखने वाले संसार का यथार्थ सामने आ जाता है ।

नवीन वेदान्ती इस कोटि के नास्तिक हैं । ऐसे नास्तिकों को उत्तर देते हुए महर्षि लिखते हैं ।

"जब सब की नित्यता भी अनित्य है तो सब अनित्य नहीं हो सकते । वेदान्ती जो ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति मानते हैं तो ब्रह्म के सत्य होने से उस का कार्य कभी असत्य नहीं हो सकता । जो स्वप्न, रज्जू-सर्पादिवत् कल्पित कहें तो भी ठीक नहीं सिद्ध होता क्यों कि कल्पना गुण है, गुण से द्रव्य कभी पृथक नहीं, और गुण द्रव्य से पृथक नहीं रह सकता। जब कल्पना का कर्ता नित्य है तो उस की कल्पना भी नित्य होनी चाहिये, नहीं तो उस (परमेश्वर) को भी अनित्य मानो ।"

नवीन वेदान्ती तर्क देते हैं कि जैसे स्वप्न में देखे हुए पदार्थ जागने पर नहीं रहते केवल उन के संस्कारों के कारण धूमिल सी स्मृति मात्र रह जाती है और सुषुप्ति में तो सभी बाह्य पदार्थों का अभाव हो जाता है । इस के अनुरूप ही सांसारिक

thearyasamaj.org

पदार्थ भी केवल स्वप्नवत् दिखते हैं उन की वास्तविक्ता कुछ नहीं ।

महर्षि नवीन वेदान्तियों का तर्क काटते हुए लिखते हैं, "ऐसा कभी नहीं मान सकते क्योंकि स्वप्न और सुषुप्ति में बाह्य पदार्थों का अज्ञानमात्र होता है, अभाव नहीं, जैसे किसी के पीछे की ओर बहुत से पदार्थ अदृष्य रहते हैं उन का अभाव नहीं होता, वैसे ही स्वप्न और सुषुप्ति की बात है।" इसलिये नवीन वेदान्ती जो सत्य को भी असत्य कहने का पाखण्ड करते हैं सब से बड़े नास्तिक हैं ।

५. जो लोग कर्म फल दर्शन को नहीं मानते, वे भी नास्तिकों की श्रेणी में आते हैं। उन के अनुसार कर्मों का फल पुरुषों के कर्म करने से प्राप्त नहीं होता, क्यों कि हम देखते है कि बहुत से उत्तम कर्म भी निष्फल जाते हैं यह केवल अनुमान अथवा अन्धविश्वास है कि ईश्वर कर्मों का फल देता है और कर्म फल ईश्वर की इच्छा के अधीन है, ईश्वर जिसे चाहे बिना कर्म किये फल दे कर सुख और समृद्धि दे दें और चाहे तो श्रेष्ठ कर्म करने वाले को भी दुःख और दरिद्रता दे दें।

नास्तिकों को भली प्रकार समझना चाहिये कि ईश्वर अपनी ही प्रजा के साथ पक्षपात पूर्ण अन्याय कभी नहीं करता । ईश्वर जीवों की भांति राग-द्वेष में लिप्त नहीं होता, उसके लिये सभी संतानें एक समान प्रिय हैं ।

६. कुछ नास्तिक तर्क देते हें कि पाँच भूत नित्य होने से यह जगत् भी नित्य है, वे उत्पत्ति और प्रलय को नहीं मानते । जगत को नित्य और अनादि मानते हैं, यह बात सत्य नहीं है क्यों

कि नित्य ही हम शरीरों और अन्य पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश देखते हैं। जगत् के सभी पदार्थ क्षर हैं उन में अवस्थान्तर होता रहता है । जगत कार्य है कारण नहीं अतः कभी नित्य नहीं हो सकता ।

७. कुछ अन्य प्रकार के नास्तिक हर पदार्थ को दूसरे से भिन्न मानते हैं । वे यह नहीं मानते कि आधारभूत मूल तत्वों के मिलने से ही सब पदार्थ निर्मित हुए हैं । यह भ्रान्ति भी अविद्या और अज्ञान के कारण से है । अवयवों में अवयवी, वर्तमान काल, आकाश, परमात्मा और जाति पृथक-पृथक पदार्थ समूहों में एक-एक हैं । एक जैसे स्वरूप वाले और जिनका स्वरूप एक नहीं भी है वे पृथक-पृथक हों ऐसा अनिवार्य नहीं । सब पदार्थों को उन की रचना के अनुरूप समुदायों में बांटा जाता है प्रत्येक को पृथक-पृथक नहीं मान सकते ।

८. कुछ नास्तिक जगत् और इस के पदार्थों की उत्पत्ति और विनाश तो मानते हैं परन्तु इसे स्वभाव से उत्पन्न हुआ मानते हैं । उनके अनुसार जल और अन्न आदि सड़ने से कृमि अपने आप उत्पन्न होते हैं। बीज, पृथ्वी, जल और ताप से वृक्ष और वनस्पतियां स्वभाव से उत्पन्न होती हैं ।

इन नास्तिको को समझना चाहिये कि यदि उत्पत्ति स्वभाव से हो तो विनाश कभी न हो और अनियमित उत्पत्ति होती रहे परन्तु हम देखते है कि सृष्टि में सभी उत्पत्ति और विनाश एक निश्चित विधान के अधीन हो रहे हैं । स्पष्ट रूप से इस कार्य का कोई कर्त्ता और नियन्ता है ।

महर्षि इन नास्तिकों को समझाते हुए लिखते हैं, "जो स्वभाव से उत्पन्न होता तो इसी भूगोल के निकट में दूसरा भूगोल चन्द्र-सूर्य आदि उत्पन्न क्यों नहीं होते । और जिस जिस के योग से जो-जो उत्पन्न होता है के उत्पन्न किये हुए बीज, अन्न जलादि के संयोग से घास, वृक्ष और कृमि आदि के संयोग से उत्पन्न होता है, बिना उन के नहीं । जिन पदार्थों के संयोग से कोई नया पदार्थ बनता है यथा रोटी का बनना, उस के अवयव अपने आप ही चलकर निश्चित मात्रा में नहीं मिल जाते जैसे ही प्रकृति के परमाणुओं को ज्ञान और युक्ति से परमेश्वर के मिलाये बिना जड़ पदार्थ स्वयं कुछ भी कार्यसिद्धि के लिये विशेष पदार्थ नहीं बन सकते । इसलिये स्वभावादि से सृष्टि नहीं होती किन्तु परमेश्वर की रचना से होती है ।"

९. जो आत्मा को अजर-अमर नहीं मानते और पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते वे भी नास्तिक हैं । वैदिक मान्यता अनुसार मृत्यु से केवल भौतिक शरीर चेतन शून्य हो कर क्रियाशील नहीं रहता और विनाश को प्राप्त होता है परन्तु चेतन अंश अर्थात् आत्म तत्व उस शरीर को त्याग कर किसी अन्य शरीर को धारण कर लेता है । आत्मा को नया शरीर, पूर्व जन्म में जीव द्वारा किये गये श्रेष्ठ या नीच कर्मों के फल अनुसार; उत्तम या न्यून योनि का मिलता है । योग और तप द्वारा इन्द्रिय निग्रह कर के मनुष्य उत्तम योनि पा सकता है यहां तक कि मोक्ष सुख का अधिकारी भी बन सकता है यह आस्तिकों का विश्वास है । इसके विपरीत विचार करने वाले भी नास्तिक हैं ।

thearyasamaj.org

१०. जो अभाव से भाव की उत्पत्ति मानते हैं या भाव का अन्त अभाव में मानते हैं वे भी नास्तिक हैं,

गीता में भी कहा है —

अभाव से कभी भाव नहीं हो सकता (यथार्थ का कभी विनाश नहीं होता)

इसी प्रकार जो सब पदार्थों (सृष्टि सहित की उत्पत्ति) की उत्पत्ति शून्य से मानते हैं और उन के अन्त के बाद भी शून्य रहेगा ऐसा मानते हैं वह भी महानास्तिक हैं ।

जो अभाव या शून्य ही सब का उत्पत्ति तत्व है तब तो उस को जानने वाला भी शून्य ही हुआ । यह तर्क न ज्ञान के आधार पर बुद्धिगमय है न विज्ञान के आधार पर ।

आस्तिक्ता और नास्तिकता आदि काल से ही विवाद का विषय रहे हैं । इस विषय पर विद्धानों में कभी मतैक्य नहीं हो पाया। बलशाली असुर सम्राट स्वयं को परमेश्वर घोषित कर के, उन्हें ऐसा न मान कर ईश्वर को मानने वालों को नास्तिक कह कर घोर दण्ड दिया करते थे । यथा हिरण्यकश्यप, कन्स आदि अपनी पूजा न करने कराने वालों को नास्तिक कह कर दण्डित करते थे ।

आज भी मुस्लिम कुरान शरीफ को अपना धर्म ग्रन्थ मानते हैं और उस पर विश्वास न लाने वालों को काफिर कहते हैं । कुरान में ही ऐसे कफ़िरों (नास्तिकों) का वध करने को पुण्य कर्म कहा गया है कुरान एक विशिष्ट समय में, विशिष्ट परिस्थितियों में एक विशिष्ट समुदाय के लिये रचा गया ग्रन्थ है अतः इस के उपदेश और आदेश नित्य नहीं माने जा सकते ।

इसी प्रकार ईसाई मत का ग्रन्थ बाईबल विरोधियों को (Athiest) नास्तिक कहता है । बाइबल केवल परमेश्वर के नाम पर फैलाये गये अन्धविश्वासों और चमत्कारों का पुलन्दा है । ज्ञान की कसौटी पर परखने से सभी सिद्धान्त रेत के महल की तरह ढ़ह जाते हैं परन्तु 'समर्थ को नहीं दोष गुसाईं' की उक्ति के अनुरूप आर्थिक, सैन्यबल तथा छल-कपट के सहारे इस मत का विस्तार हो रहा है ।

उपरोक्त दोनों मतों के ग्रन्थ (कुरान और बाईबल) सम्प्रदाय विशेष की पुस्तकें हैं । इनमें सम्पूर्ण मानवता के हित को ध्यान में रख कर कुछ नहीं कहा गया । यह पुस्तकें किसी भी दृष्टि से ईश्वरकृत नहीं कही जा सकती (जैसा कि इन मतों के अनुयायी मानते हैं) ईश्वर कृत ग्रन्थ तो केवल वह हो सकता है जिस में सम्पूर्ण जीव सृष्टि का हित निहित हो । सब चराचर के कल्याण के लिये विधान दिया गया हो । ऐसा ग्रन्थ केवल वेद है जिन्हें स्वयं परमेश्वर ने समाधिस्थ दिव्य बुद्धि वाले ऋषियों की आत्माओं में प्रकाशित किया । वेद वचन आज भी उतने ही सत्य हैं जितने अरबों वर्ष पूर्व थे । यह नित्य ज्ञान सब सत्य विद्याओं का मूल स्रोत है। इसी लिये हर विषय पर वेद की साक्षी ही हमारा मार्ग दर्शन करती है)

thearyasamaj.org

सच्चा आस्तिक कौन ?

१. जो ईश्वर की सत्ता में पूर्ण विश्वास रखता है, ईश्वर को सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्व-शक्तिमान, सर्व-व्यापक, सर्वज्ञ, सर्व-अन्तर्यामी, सर्वेश्वर, सर्वाधार, न्यायकारी, दयालु अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, सृष्टि कर्ता, धर्ता, हर्ता और मोक्ष दाता मानता है, ऐसा मान कर उसी की उपासना करता है।

२. जो वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानता है ऐसा इसलिये नहीं कि वे आर्ष ग्रन्थ हैं अपितु इसलिये कि वेदों में समस्त जीव जन्तुओं और सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण को सम्मुख रख कर प्रत्येक मन्त्र रचा गया है ।

३. जो वेदों और अन्य आर्ष ग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित यम नियमों व धर्म को जीवन में धारण करने का प्रयास करता है जैसे -

(क) सत्य बोलना, सत्य की सूक्ष्म गति को समझते हुए लोक हित में जैसा शास्त्राज्ञा अनुसार करना उचित हो वैसा करना ।

(ख) पक्षपात रहित न्याय धर्म को अपनाना किसी प्रकार के भी स्वार्थ के प्रलोभन में न्याय पक्ष नहीं छोड़ना ।

(ग) निषिद्ध कर्म न करना यथा झूठ बोलना, चोरी करना, पक्षपात करना, आवश्यकता से अधिक संग्रह करना ।

(घ) सभी प्रकार के द्वन्द्वों से मुक्त रहना यथा राग-द्वेष, यश-अपयश, हानि-लाभ आदि से मन को व्याकुल नहीं करना ।

३. जो जीव उत्पीड़न एवं हत्या से बचता है, आहार-व्यवहार स्वच्छ रखता है, पञ्च महायज्ञों को प्रतिदिन श्रद्धा से करता है ।

thearyasamaj.org

४. जो मूर्ति पूजा नहीं करता । मूर्ति के सम्मुख नत-मस्तक होने का अर्थ है कि केवल वहीं पर उस पाषाण में ईश्वर है अन्यत्र नहीं । ध्यान में ईश्वर को हर समय रखते हुए उस की प्रजा के साथ सद्-व्यवहार करता है और अपना आचरण शुद्ध रखना ही प्रभु पूजा मानता है । मूर्ति पूजकों से कलह नहीं करता, उनकी निन्दा नहीं करता, उनसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करता है । क्योंकि जिस भी उद्देश्य से वह निराकार परमेश्वर की उपासना करता है, उद्देश्य उन का भी वही है परन्तु वे भ्रमित हो कर भटके हुए हैं । प्रभु से उनकी सदबुद्धि के लिए प्रार्थना करता है ।

५. जो मानता है कि सब सुख प्रभु कृपा से मिल रहे हैं उसका सुखों पर कोई अधिकार नहीं है इसलिये अभिमान नहीं करता, दुःख किसी पूर्व पाप-कर्म के फल के रूप में आये हैं यह मान कर धीरज से सह लेता है, दुःखों के लिये ईश्वर या किसी अन्य को कोसता नहीं, यह आशा भी नहीं छोड़ता कि प्रभु कृपा से दुःख के बादल छट जायेंगे और सुख का सूर्य उदय होगा ।

६. जो मानता है कि परमेश्वर ने बिना किसी स्वार्थ के अपनी प्रजा के सुख के लिये सारी सृष्टि के पदार्थ दान में दे दिये हैं, सूर्य अविरल ताप और प्रकाश बांट कर जड़-चेतन पर उपकार करता है, बादल, झरने, नदियां अपना धरती और इसके प्राणियों को उपलब्ध कराते हैं, फूल अपनी सुगन्धि से सबको लुभाते हैं । यह सब देखकर यथा सामर्थ्य कुछ देने की प्रवृति बनाये रखने में आत्म कल्याण मानता है, अपना जीवन संतोष से काटता है, कोई महत्वाकांक्षा उसे

thearyasamaj.org

विचलित नहीं करती, अभाव उसे विक्षिप्त नहीं करता ।

गोधन गजधन बाजिधन, सब रतनन की खान ।
जब आवे संतोष धन, सब धूलि समान ॥

७. जिसकी स्वाध्याय में रुचि है, आर्ष ग्रन्थों के स्वाध्याय में जिसका मन लगता है, अच्छा ग्रन्थ पढ़ कर और उस पर मनन-चिन्तन करने पर जिसे आत्मिक तुष्टि मिलती है और उस से परमेश्वर के सानिध्य का अनुभव होता है।

८. जो मानता है कि अद्वैतवाद और त्रैतवाद के तर्क-वितर्क और विवाद तो विद्वानों के मस्तिष्क का व्यायाम हैं, इससे आस्तिकता का कुछ विशेष सम्बन्ध नहीं है । परमेश्वर अपनी प्रजा पर बिना पक्षपात के न्याय पूर्वक उपकार करता है ऐसे ही वह भी यथा सम्भव करता है और उसे सबसे बड़ी परमेश्वर की उपासना मानता है । सत्यासत्य के निर्णय में अपनी आत्मा की साक्षी लेता है, सदैव सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करने में दुराग्रह और हठधर्मी को आड़े नहीं आने देता।

९. जो बुरी संगत से दूर रहता है और अच्छी संगत अर्थात सत्-संग का लाभ उठाने में सब काम छोड़ कर समय निकाल लेता है । महा-पुरुषों के प्रवचन सुनने, उस पर मनन करने और यदि कोई शंङ्का हो तो पूछने में संकोच नहीं करता, निःसन्देह होने पर निदिध्यासन अर्थात ध्यान मुद्रा में बैठ कर उस के हर पक्ष पर विचार करता है और फिर साक्षात्कार अर्थात् ज्ञान के स्वरूप को बुद्धि और जीवन में धारण करता है, आर्ष ग्रन्थों के अध्ययन और विद्वानों के विचारों के श्रवण

मनन से बुरे विचारों और भ्रष्ट क्रर्मों से मन को दूर रखता है और सद्-कर्मों के करने की प्रेरणा ओरों को देता है ।

१०. जो वर्ण भेद, रंग भेद, लिङ्ग भेद को नीच विचारधारा मानता है, विभिन्न मतों के अनुयायियों से विचार-विनिमय में कभी उग्र नहीं होता, पक्ष पर दृढ़ रहते हुए भी उन के पक्ष की बातों को धैर्य से सुनता और उन के अज्ञान पर विस्मित होता है, उनको सद्-मार्ग पर लाने के लिए प्रभु से प्रार्थना करता है, सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना और दीन-दुखियों के लिये सहानुभूति रखता है और यथासम्भव उनकी सहायता करता है, दुखियों की सेवा को ईश्वर भक्ति मानता है।

११. जो जीवन में चिन्ताओं को अधिक स्थान नहीं देता, प्रभु में दृढ़ विश्वास रखता है, धैर्य रख कर विपत्तियों से जूझने के लिये पुरुषार्थ करता है और मानता है कि मैं मानता हूँ कि "प्रभु उन्हीं की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता आप करते हैं ।"

जिस समस्या का उपाय उसे नहीं मिलता, उसे वह प्रभु पर छोड़ कर अपनी भक्ति, ध्यान और अच्छे कर्मों में लगा देता है। समस्या स्वत। प्रभु कृपा से दूर हो जाती है और परमेश्वर में उसका विश्वास और दृढ़ हो जाता है ।

thearyasamaj.org

मनुष्य जन्म व मुख्य लक्ष्य

सृष्टि के आरम्भ में अनादि, अनन्त, अजन्मा, दिव्य, अजर, अमर, अविकारी और ज्ञानातीत ब्रह्म ही था, दूसरा अनादि तत्व लुप्त अवस्था में प्रकृति था। ईश्वर ने निमित्त कारण बन कर प्रकृति से भौतिक तत्व ले कर सृष्टि रची । जीव सृष्टि में मनुष्य योनि सर्वोत्तम है। केवल यही कर्म योनि है शेष सब भोग योनियां हैं। सृष्टि की उत्पत्ति से अब तक मनुष्य के कर्मों अनुसार फल रूप में उस की अगली योनि का निर्णय परमेश्वर करता है। पाप कर्मों के फल रूप में मनुष्य को निकृष्ट योनि मिलती है और पुण्य कर्मों के फल रूप में उत्तम योनियां मिलती है । सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने अनेकों मनुष्य युवावस्था में उत्पन्न कर उन्हें मैथुनी सृष्टि चलाने का सामर्थ्य दिया। उन्हीं मनुष्यों और उन की सन्तानों को बुद्धि, विवेक और कर्मेन्द्रियों के साथ मन दिया और काम करने की स्वतन्त्रता दी । उन के श्रेष्ठ या नीच कर्मों का फल देने का अधिकार परमेश्वर ने अपने हाथ में रखा। करोड़ों वर्षों में इन्हीं मनुष्यों को कर्मों का फल भोगने के लिये अन्य योनियों की उत्पत्ति हुई, इसलिये वे सब भोग योनियां कहाती हैं ।

महर्षि ने बड़े संक्षेप से "मनुष्य जन्म कब मिलता है" के सम्बन्ध में लिखा है :-

"जब पाप बढ़ जाता है पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पशु पक्षी आदि नीच शरीर और जब धर्म अधिक और अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात विद्वानों का शरीर मिलता और जब पुण्य-पाप सम होता है तब साधारण मनुष्य का जन्म होता है। इस में भी पुण्य-पाप के उत्तम, मध्यम और निकृष्ट होने से मनुष्यादि

में भी उत्तम, मध्यम और निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं। पापों का दुःख रूप फल भोग लेने पर पश्वादि योनियां पुनः मनुष्य शरीर में जन्म लेती हैं।"

महर्षि ने बड़े सुन्दर ढ़ंग से 'मनु' को उद्धृत करते हुए सत्यार्थ प्रकाश में इस की व्याख्या की है।

महर्षि लिखते हैं, "मनुष्य यह निश्चित जाने कि जो जीव मन से शुभ या अशुभ कर्म करता है उस को मन से उस के फल रूप में सुख या दुःख भोगने पडते हैं। इसी प्रकार वाणी से किये कर्मों का फल वाणी से और शरीर से किये कर्मों का फल शरीर से भोगना पड़ता है। जो नर शरीर से चोरी, परस्त्रीगमन, श्रेष्ठों को मारने आदि का दुष्ट कर्म करता है उसे वृक्षादि स्थावर का जन्म, वाणी से किये पाप कर्मों से पक्षी और मृगादि तथा मन से किये दुष्ट कर्मों से चाण्डाल आदि का शरीर मिलता है। जो गुण इन जीवों में (मनुष्य में) अधिकता से बर्त्तता है वह उस जीव को अपने सदृश कर लेता है। उसी के अनुरूप अगली योनि मिलती है।"

इसके पश्चात् महर्षि गुणों की विस्तार से चर्चा करते हैं क्यों कि गुण ही मनुष्य को उत्तम, मध्यम या नीच कर्म करने के लिये प्रेरित करते हैं और किये हुए कर्म, अगली योनि का निर्धारण करते हैं। महर्षि लिखते हैं, "जब आत्मा में ज्ञान हो तब 'सत्त्व' जब अज्ञान हो तब 'तम' और जब राग- द्वेष में आत्मा लगे तो रजोगुण जानना चाहिए। ये तीन प्रकृति के गुण सब पदार्थों में व्याप्त हो कर रहते हैं।"

महर्षि आगे लिखते हैं, "गुणों का विवेक इस प्रकार करना चाहिए - जब आत्मा में प्रसन्नता, मन प्रसन्न, प्रशान्त के सदृश शुद्ध मान युक्त बर्ते तब समझना कि सत्व गुण प्रधान है और रजोगुण और

thearyasamaj.org

तमोगुण अप्रधान हैं। जब आत्मा और मन दुःख संयुक्त प्रसन्नतारहित विषय में इधर-उधर गमन-आगमन में लगे तब समझना कि रजोगुण प्रधान है और सत्त्व और तमोगुण अप्रधान हैं । जब मोह अर्थात् संसारिक पदार्थों में फंसा हुआ मन और आत्मा हो, जब आत्मा और मन में विवेक न रहे, तब निश्चय जानना चाहिये कि मुझ में तमोगुण प्रधान है और सत्व और रजोगुण अप्रधान है।"

"तमोगुण का लक्षण काम, रजोगुण का अर्थ-संग्रह की इच्छा और सत्त्व गुण का लक्षण धर्म सेवा करना है। तमोगुण से रजोगुण और रजोगुण से सत्त्वगुण श्रेष्ठ है"

अब जिस-जिस गुण से जिस-जिस गति को जीव प्राप्त होता है सो-सो आगे लिखते हैं :-

जो मनुष्य सात्विक है अर्थात जो जीवन में श्रेष्ठ कर्म करता हुआ उत्तम फल को प्राप्त होता है वह 'देव' अर्थात् विद्वान के रूप में अगला जन्म पाता है । जो रजोगुणी होते हैं और जिन के कर्मों के अनुसार उसे मनुष्य योनि मिलनी हो तो उसे मध्यम श्रेणी का मनुष्य जन्म मिलता है अर्थात दुःख-सुख मिश्रित अगला जन्म होगा । जो तमोगुण युक्त होते हैं वे सतत् दुःख व नीच मनुष्य का जन्म पाते हैं ।

मनुष्य जन्म प्राप्त करने के लिये वर्तमान जन्म के कर्मों का संचित फल कम से कम मध्य स्तर तक होना चाहिए। यदि केवल पाप कर्म कर के संचित कर्मफल अतिन्यून होगा तो अन्य योनियों में जिस के योग्य वह आंका जायेगा उस में जायेगा । मनुष्य योनि प्राप्त होने पर भी वह उत्तम, मध्यम या नीच गति पायेगा इस सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं, "जो मनुष्य सात्त्विक हैं वे 'देव' अर्थात विद्वान का जन्म पाते हैं । जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो

तमोगुणी हैं वे स्थावर वृक्षादि, कृमि, कीड़े, मत्स्य, सर्प, कच्छप, पशु और मृग का जन्म पाते हैं । जो मध्यम तमोगुणी हैं, वे हाथी घोड़ा, शूद्र, म्लेच्छ निन्दित काम करने वाले, सिंह, व्याघ्र वराह अर्थात् सूअर के जन्म को प्राप्त होते हैं । जो उत्तम तमोगुणी हैं वे चारण, (जो दोहा आदि बना कर मनुष्यों की प्रशंसा करते हैं), सुन्दर पक्षी और दांभिक पुरुष अर्थात् अपने मुहँ से अपनी प्रशंसा करने हारा, राक्षस जो हिसंक, पिशाच और अनाचारि अर्थात् मद्यादि के आहार कर्ता और मलिन रहे, वह उत्तम तमोगुणी के कर्मों का फल है । 'झल्ला' अर्थात् तलवार आदि से मारने वाले या कुदार आदि से तालाब आदि को खोदनेहारे, 'मल्ला' अर्थात नौका आदि को चलाने वाले, 'नट' जो बांस आदि पर कला (कूदना, चढ़ना उतरना) आदि करते हैं, शस्त्रधारी भृत्य, द्युत, और मद्य पान में आसक्त हों, ऐसे जन्म नीच रजोगुण का फल हैं । जो मध्यम रजोगुणी होते हैं, वे राजा, क्षत्रियवर्णस्थ राजाओं के पुरोहित, वाद विवाद करने वाले, दूत, ... विवाक (वकील, बारिस्टर), युद्ध विभाग के अध्यक्ष का जन्म पाते हैं । जो उत्तम रजो गुणी हैं वे (गंधर्व) गानेवाले, (गुह्यक) वादित्र बजाने हारे यक्ष (धनाव्य), विद्वानों के सेवक, और अप्सरा अर्थात् उत्तम रूप वाली स्त्री का जन्म पाते हैं। जो तपस्वी, यति-सन्यासी, वेद -पाठी, विमान के चलाने वाले, ज्योतिषि और 'दैत्य' अर्थात देहपोषक मनुष्य होते हैं, उन को प्रथम सत्त्वगुण के कर्म का फल जानों । जो मध्यम सत्त्वगुण युक्त हो कर कर्म करते हैं वे जीव यज्ञकर्ता, वेदार्थवित्, विद्वान्, आदि और काल-विद्या के ज्ञाता, रक्षक-ज्ञानी और साध्य कार्यसिद्धि के लिये सेवन करने योग्य अध्यापक का जन्म पाते हैं ।"

महर्षि आगे लिखते हैं, "जो उत्तम सत्तोगुणयुक्त होकर उत्तम कर्म करते हैं, वे 'ब्रह्म' सब वेदों का वेत्ता, 'विश्वसृज' सब सृष्टिक्रम

विद्या को जानकर विविध विमानादि यानों को बनानेहारे, धार्मिक, सर्वोत्तम बुद्धियुक्त जन्म को प्राप्त होते हैं । जो इन्द्रियों के वश हो कर विषयी, धर्म को छोड़ कर अधर्म करने हारे अविद्वान हैं, वे मनुष्यों में नीच जन्म बुरे-बुरे दुःख रूप जन्म को पाते हैं । इस प्रकार सत्त्व, रज और तमोगुण युक्त वेग से जिस-जिस प्रकार कर्म जीव करता है, उस-उस को उसी-उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है और इसी के अनुरूप जन्म मिलता है ।

मनुष्य जन्म के मुख्य मोक्ष लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये उपाय :—

जैसा पूर्व लिख आये हैं, केवल मनुष्य योनि ही कर्म योनि है शेष सभी भोग योनियां हैं । ईश्वर ने मनुष्य को ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां, मन और बुद्धि देकर कर्म करने की स्वतन्त्रता दे दी परन्तु उस के अच्छे अथवा बुरे कर्मों का फल देने का अधिकार अपने पास सुरक्षित रखा । मनुष्य का विवेक और आत्मा उसे अच्छे कर्म करने के लिये प्रेरित करते हैं परन्तु प्रकृति के गुण (सत्व, रज और तम) उसे सदा सत्य मार्ग से भटकाने में लगे रहते हैं । विवेक से मनुष्य नीर-क्षीर का निर्णय करने की योग्यता रखता है इसी से वह अपने लिये अपने लक्ष्य निर्धारित कर सकता है । शास्त्रों में मनुष्य के लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चार लक्ष्य लिखे हैं परन्तु मुख्य लक्ष्य तो दुःखों से अनन्त छुटकारा पाना है । दुःखों से छुटकारा अनित्य और विनाशशील वस्तुओं के साथ सम्बन्धों से नहीं मिलता । इस के लिये नित्य और अविनाशी तत्व से सम्बन्ध जोड़ना और उस का साक्षात्कार करना अनिवार्य है । पहला नित्य अविनाशी तत्व आत्मा है इस लिये सांसारिक एवं भौतिक पदार्थों से विरक्त हो कर आत्मज्ञान प्राप्त करना ही पहला मुख्य लक्ष्य है । पश्चात् आत्माओं की आत्मा अर्थात परमात्मा का साक्षात्कार होने पर ही मनुष्य को

thearyasamaj.org

जीवन का मुख्य लक्ष्य प्राप्त होता है। परमेश्वर नित्य आनन्दस्वरूप है। वह अक्षय आनन्द निधि प्राप्त होने पर दुःख सदा के लिये लुप्त हो जाते हैं और यही मोक्ष है, मुक्ति है ।

उपरोक्त लक्ष्य की प्राप्ति इतनी सरल नहीं जितना सरल उस के उपायों को सूचिबद्ध करना है । फिर भी इस मार्ग पर चलने का प्रयास परम कर्त्तव्य है । सत्यार्थप्रकाश के नवम् समुल्लाम के अध्ययन से प्राप्त कुछ संकेत नीचे दे रहे हैं :–

१. नित्य सुख और परमशक्ति केवल मात्र ईश्वर साक्षात्कार से मिलती है और इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये ईश्वर कृपा आवश्यक है ।

२. ईश्वर कृपा प्राप्त करने के लिये विनयशील हो कर प्रभु की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनी चाहिए ।

३. ईश्वर का वास मनुष्य के अन्दर है। वह ही सब की आत्मा की आत्मा है । अतएव ईश्वर को अपने अन्दर ही टटोलना चाहिए। जो उसे अपने अन्दर नहीं पा सकता वह उसे कहीं भी नहीं पा सकता ।

४. ईश्वर सत्यमय है, प्रेममय है । सदा सच बोलने और प्राणिमात्र से प्रेम करने से भगवदानुभूति शीघ्र की जा सकती है ।

५. भगवान् इस विश्व में सर्वत्र व्याप्त है, प्रत्येक प्राणी के प्रत्येक अवयव में वह विराट पुरुष व्याप्त है, गीता में भी आया है "सर्वत। पाणिपादम् ।" यदि इस बात को दृढ़ता से मान लिया जाये तो शीघ्र ही ब्रह्म साक्षातकार सम्भव है । इससे समत्व बुद्धि उपजेगी, सम्यक् ज्ञान प्राप्त होगा, ऊँच-नीच, घृणा, द्वेष का भाव मिट जायेगा तथा विश्व प्रेम उपजने से परमेश्वर से एकात्मता बनेगी ।

theaaryasamaj.org

६. अनादि आत्मा निष्पाप है, निर्लेप है, अजर है, अमर है, इस को कोई चिन्ता नहीं, कोई भय नहीं । यह असली अविनाशी तत्व है। इसी को समझना और जानना धर्म है, यही विद्या है। इसके पश्चात् कुछ और जानना शेष नहीं रहता। अभिलाषायें निःशेष हो जाती हैं। यही परमेश्वर के साक्षात्कार का सरल मार्ग है ।

७. मानव जीवन का लक्ष्य आत्म ज्ञान अर्थात परमात्म ज्ञान प्राप्त करना है। मनुष्य का जन्म ही इस लक्ष्य प्राप्ति के लिये होता है, पर मोह और अविद्या के कारण इसे भूल कर भटक जाता है। किन्तु नित्य सत्संग, योगियों-सन्यासियों-महात्माओं के उपदेश, जप, स्वाध्याय, श्रद्धाभाव, वैराग्य, यमनियम, धारणा, ध्यान, और समाधि से रजोगुण और तमो-गुण को निरस्त कर इन्द्रियों को निरुद्ध कर कालान्तर में मनुष्य ईश्वरानुभव प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है ।

८. आत्मा का ज्ञान विवेक, वैराग्य, मुमुक्षत्व, श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । यह सभी गुण सरलता से धारण नहीं किये जा सकते । इनके लिये सतत् अभ्यास और अटूट तप करना आवश्यक है ।

९. राग-द्वेष, यश-अपयश, हानि-लाभ और सभी प्रकार की ऐषणाओं के बन्धनों को तोड़ कर द्वन्द्व मुक्त होना चाहिये ये सब निरर्थक भाव हैं । इन से मन को कभी शान्ति नहीं मिलती । ये सब दुःख और अशान्ति का प्रजनन करते हैं ।

१०. मनुष्य को निर्भय, निश्चिन्त और वैरागी होना चाहिए, केवल मात्र निराकार ब्रह्म के चरणों में स्वयं को उत्सर्ग कर देना चाहिये । ब्रह्म प्राप्ति के लिये अंह अर्थात अहंकार का त्याग आवश्यक है ।

११. महर्षि मनु महाराज को उद्धृत करते हुए लिखते हैं, "जल से शरीर के बाहर के अवयव; सत्याचरण से मन; विद्या और तप से जीवात्मा; ज्ञान अर्थात पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों के विवेक से बुद्धि पवित्र होती है। हर प्रकार के साधनों से शरीर, मन, बुद्धि को पवित्र रखने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि उस परम पवित्र दिव्य ज्योति रूप से मल-छल के साथ मिलना तो सम्भव ही नहीं । एक बार शरीर, मन, विचार, व्यवहार पवित्र हो जाये तो समझो लक्ष्य दूर नहीं है। कबीर जी लिखते हैं —

"कबीर मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर ।
पाछे-पाछे हरि फिरें, कहत कबीर -कबीर॥"

१२. हृदय की संकीर्णता का प्रधान कारण स्वार्थ है। स्वार्थ ही सब सद्भावों को नष्ट कर देता है । स्वार्थ नीच वृत्तियों का जनक है । स्वार्थ त्याग के बिना मनुष्य आत्मज्ञान को एवं ब्रह्म ज्ञान के अपने लक्ष्य को कभी पा ही नहीं सकता ।

१३. केवल मन्दिरों में मूर्तियों के समक्ष माथा रगड़ने से ईश्वर साक्षात्कार नहीं हो सकता । घर में, कार्यालय में, खुले मैदान में कहीं भी ईश्वर की अनुभूति हो सकती है यदि आप का मन पवित्र, आचार छल रहित और व्यवहार निःस्वार्थ हो । मुमुक्षु भाव अर्थात् तीव्र लग्न से ढूंढो, भगवान स्वयं प्रकट हो कर आनन्द विभोर कर देगें ।

१४. हर काम करते हुए प्रभु की ही टेक रखें । काम में सफलता भी मिलेगी और आनन्द भी आयेगा जैसे 'नट' गीतगाते हुए, नृत्य करते हुए भी ध्यान केवल रस्से पर रखता है । जहां ध्यान चूका; वहीं लक्ष्य से गिरे । आत्म ज्ञान और परमेश्वर

की अनुभूति के फल स्वरूप मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है। जीवन मुक्त जीव को दुःख व्याकुल नहीं करते और सुख उस का अहंभाव नहीं बढ़ाते, सदैव हर परिस्थिति में समत्व भाव में रहता है, सदा शान्त और गम्भीर एवं संयमी तथा संतोषी रहता है , राग-द्वेष, मान-अपमान, हानि-लाभ आदि द्वन्द्वों से उपर उठा रहता है, सदा तृप्त, निश्चिन्त और निर्भय रहता है । केवल जीवन मुक्त मनुष्य ही मोक्ष अथवा मुक्ति का सही अधिकारी है । जीवन में दुःखों से छुटकारा और मरने पर चिर मुक्ति यही जीव का परम लक्ष्य है ।

महर्षि मुक्ति के लिये आवश्यक बातें संक्षेप में लिखते हैं :- "परमेश्वर की आज्ञा पालने; अधर्म-अविद्या-कुसंग-कुसंस्कार-बुरे व्यसनों से अलग रहने और सत्यभाषण, परोपकार-विद्या, पक्षपात रहित न्याय धर्म की वृद्धि करने, पूर्वोक्त प्रकार से परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अर्थात् योगाभ्यास करने, विद्या पढ़ने-पढ़ाने और धर्म से पुरुषार्थ कर ज्ञान की उन्नति करने, सब से उत्तम साधनों को करने, जो कुछ करें वह सब पक्षपातरहित न्याय धर्मानुसार ही करे, इत्यादि साधनों से मुक्ति और इन से विपरीत ईश्वर-आज्ञा भंग करने आदि से बन्ध होता है ।"

इन साधनों के साथ महर्षि ने यम-नियम पालन, विवेक, वैराग्य, षट्क सम्पत्ति, मुमुक्षुत्व, श्रवण-चतुष्टय आदि को मनुष्य द्वारा परम लक्ष्य अर्थात् मुक्ति प्राप्ति के लिये आवश्यक बताया है ।

thearyasamaj.org

बाल शिक्षा क्यों और कैसे ?

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ।

यह शतपथ ब्राह्मण का वचन है । वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता, दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है । वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ा भाग्यवान् ! जिसके माता और पिता धार्मिक विद्वान् हों । जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं । जैसे माता सन्तानों पर प्रेम, उनका हित करना चाहती है उतना अन्य कोई नहीं करता । इसीलिये (मातृमान्) अर्थात् '**प्रशास्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृमान्** । धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का 'उपदेश करे ।' माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें कि जिससे रजस् वीर्य्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हो । जैसा ऋतुगमन की विधि अर्थात् रजोदर्शन के पांचवें दिवस से लेके सोलहवें दिवस तक ऋतुदान देने का समय है उन दिनों में से प्रथम के चार दिन त्याज्य हैं, रहे १२ दिन, उनमें एकादशी और त्रयोदशी को छोड़ के बाकी १० रात्रियों में गर्भाधान करना उत्तम है । और रजोदर्शन के दिन से लेके १६ वीं रात्रि के पश्चात् न समागम करना। पुनः जब तक ऋतुदान का समय पूर्वोक्त न आवे तब तक और

गर्भस्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों। जब दोनों के शरीर में आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता, किसी प्रकार का शोक न हो। जैसा चरक और सुश्रुत में भोजन छादन का विधान और मनुस्मृति में स्त्री-पुरुष की प्रसन्नता की रीति लिखी है उसी प्रकार करें और वर्तें। गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन छादन करना चाहिये। पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का संग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्ति और गुणकारक द्रव्यों का ही सेवन स्त्री करती रहे कि जब तक सन्तान का जन्म न हो।

जब जन्म हो तब अच्छे सुगन्धियुक्त जल से बालक को स्नान, नाड़ीछेदन करके सुगन्धयुक्त घृतादि का होम और स्त्री के भी स्नान भोजन का यथायोग्य प्रबन्ध करे कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाय। ऐसा पदार्थ उसकी माता वा धायी खावे कि जिससे दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावें। पश्चात् धायी पिलाया करे परन्तु धायी को उत्तम पदार्थों का खान पान माता पिता करावें। जो कोई दरिद्र हो, धायी को न रख सके तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम औषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करने हारी हो उनको शुद्ध जल में भिजा, औटा, छान के दूध के समान जल मिला के बालक को पिलावें। जन्म के पश्चात् बालक और उसकी माता को दूसरे स्थान जहाँ का वायु शुद्ध हो वहां रक्खें, सुगन्ध तथा दर्शनीय पदार्थ भी रक्खें और उस स्थान में भ्रमण कराना उचित है जहाँ का वायु शुद्ध हो। जहाँ धायी, गाय, बकरी आदि का दूध न मिल सके वहां जैसा उचित समझें वैसा करें। क्योंकि प्रसूता स्त्री के शरीर के अंश से बालक का शरीर होता है, इसी से स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है इसलिये प्रथम छः दिन के बाद प्रसूता स्त्री दूध

न पिलावे । दूध रोकने के लिये स्तन के छिद्र पर उस औषधी का लेप करे जिससे दूध स्रवित न हो । ऐसे करने से स्त्री दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है । तब तक पुरुष ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य का निग्रह रक्खें । इस प्रकार जो स्त्री वा पुरुष करेंगे उनको उत्तम सन्तान, दीर्घायु, बल पराक्रम की वृद्धि होती ही रहेगी। स्त्री योनिसङ्कोच, शोधन और पुरुष वीर्य्य का स्तम्भन करे । पुनः सन्तान जितने होंगे वे भी सब उत्तम होंगे ।

बालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा करे, जिससे सन्तान सभ्य हों और किसी अङ्ग से कुचेष्टा न करने पावें । जब बोलने लगें तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके वैसा उपाय करे कि जो जिस वर्ण का स्थान, प्रयत्न अर्थात् जैसे 'प' इसका ओष्ठ स्थान और स्पृष्ट प्रयत्न दोनों ओष्ठों को मिलाकर; ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना । मधुर, गम्भीर, सुन्दर स्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे । जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे, मान्य, पिता, माता, राजा, विद्वान, आदि से भाषण, उन से वर्त्तमान और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा करें जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न हो के सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे । जैसे सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करें वैसा प्रयत्न करते रहें । व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें । उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती है और हस्त में दुर्गन्ध भी होता है इससे उसका स्पर्श न करें । सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो, करावें ।

thearyasamaj.org

जब पांच-पांच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें । अन्यदेशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिन से अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्त्तना इन बातों के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें । जिन से सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवें और जो-जो विद्या, धर्मविरुद्ध भ्रान्तिजाल में गिराने वाले व्यवहार हैं उनका भी उपदेश कर दें, जिससे भूत प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो ।

गुरोः प्रेतस्य शिष्यस्तु पितृमेधं समाचरन् ।
प्रेतहारैः समं तत्र दशरात्रेण शुद्ध्यति ।। मनु० ।।

अर्थ—जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतकशरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करनेहारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है ।

और जब उस शरीर का दाह हो चुका तब उसका नाम भूत होता है अर्थात् वह अमुकनामा पुरुष था । जितने उत्पन्न हों, वर्त्तमान में आके न रहें वे भूतस्थ होने से उनका नाम भूत है । ऐसा ब्रह्मा से लेके आज पर्यन्त के विद्वानों का सिद्धान्त है परन्तु जिसको शङ्का, कुसंग, कुसंस्कार होता है उसको भय और शंकारूप भूत, प्रेत, शाकिनी, डाकिनी आदि अनेक भ्रमजाल दुःखदायक होते हैं ।

देखो ! जब कोई प्राणी मरता है तब उसका जीव पाप, पुण्य के वश होकर परमेश्वर की व्यवस्था से सुख दुःख के फल भोगने के अर्थ जन्मान्तर धारण करता है । क्या इस अविनाशी परमेश्वर की व्यवस्था का कोई भी नाश कर सकता है ? अज्ञानी लोग वैद्यक

thearyasamaj.org

शास्त्र वा पदार्थ विद्या के पढ़ने, सुनने और विचार से रहित होकर सन्निपातज्वरादि शारीरिक और उन्मादादि मानस रोगों का नाम भूत प्रेतादि धरते है। उनका औषधसेवन और पथ्यादि उचित व्यवहार न करके उन धूर्त्त, पाखण्डी, महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भङ्गी, चमार, शूद्र, म्लेच्छादि पर भी विश्वासी होकर अनेक प्रकार के ढोंग, छल, कपट और उच्छिष्ट भोजन, डोरा, धागा आदि मिथ्या मन्त्र, यन्त्र बांधते बंधवाते फिरते हैं। अपने धन का नाश, सन्तान आदि की दुर्दशा और रोगों को बढ़ा कर दुःख देते फिरते हैं। जब आंख के अन्धे और गांठ के पूरे उन दुर्बुद्धि पापी स्वार्थियों के पास जाकर पूछते हैं कि 'महाराज ! इस लड़का, लड़की, स्त्री और पुरुष को न जाने क्या हो गया है ?' तब वे बोलते हैं कि इसके शरीर में बड़ा भूत, प्रेत, भैरव, शीतला आदि देवी आ गई है, जब तक तुम इसका उपाय न करोगे तब तक ये न छूटेंगे और प्राण भी ले लेंगे। जो तुम मलीदा वा इतनी भेंट दो तो मन्त्र, जप, पुरश्चरण से झाड़ के इन को निकाल दें। तब वे अन्धे और उनके सम्बन्धी बोलते हैं कि 'महाराज! चाहे हमारा सर्वस्व जाओ परन्तु इन को अच्छा कर दीजिये।' तब तो उनकी बन पड़ती है। वे धूर्त्त कहते हैं। 'अच्छा लाओ इतनी सामग्री, इतनी दक्षिणा, देवता को भेंट और ग्रहदान कराओ।' झांझ, मृदङ्ग, ढोल, थाली लेके उसके सामने बजाते, गाते और उनमें से एक पाखण्डी उन्मत्त होके नाच, कूद के कहता है—'मैं इसका प्राण ही ले लूंगा।' तब वे अन्धे उस भङ्गी, चमार आदि नीच के पगों में पड़ के कहते हैं— 'आप चाहैं सो लीजिये इसको बचाइये।' तब वह धूर्त्त बोलता है—'मैं हनुमान् हूँ, लाओ पक्की मिठाई, तेल, सिन्दूर, सवा मन का रोट और लाल लंगोट। मैं देवी वा भैरव हूँ, लाओ पांच बोतल मद्य, बीस मुर्गी, पांच बकरे, मिठाई और वस्त्र।

जब वे कहते हैं कि 'जो चाहो सो लो' तब तो वह पागल बहुत नाचने कूदने लगता है परन्तु जो कोई बुद्धिमान् उनकी भेंट 'पांच जूता, दण्डा वा चपेटा, लातें मारे' तो उसके हनुमान्, देवी और भैरव झट प्रसन्न होकर भाग जाते हैं । क्योंकि वह उनका केवल धनादि हरण करने के प्रयोजनार्थ ढोंग है ।

और जब किसी ग्रहग्रस्त ग्रहरूप ज्योतिर्विदाभास के पास जाके वे कहते हैं—'हे महाराज! इसको क्या है ?' तब वे कहते हैं कि 'इस पर सूर्य्यादि क्रूर ग्रह चढ़े हैं । जो तुम इन की शान्ति पाठ, पूजा, दान कराओ तो इसको सुख हो जाय, नहीं तो बहुत पीड़ित होकर मर जाय तो भी आश्चर्य नहीं ।'

(उत्तर) कहिये, ज्योतिर्वित् ! जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं, वे ताप और प्रकाशादि से भिन्न कुछ भी नहीं कर सकते । क्या ये चेतन हैं जो क्रोधित होके दुःख और शान्त होके सुख दे सकें ?

(प्रश्न) क्या जो यह संसार में राजा प्रजा सुखी दुःखी हो रहे हैं यह ग्रहों का फल नहीं है ?

(उत्तर) नहीं, ये सब पाप पुण्यों के फल हैं ।

(प्रश्न) तो क्या ज्योतिषशास्त्र झूठा है ?

(उत्तर) नहीं, जो उस में अंक, बीज, रेखागणित विद्या है वह सब सच्ची, जो फल की लीला है वह सब झूठी है ।

(प्रश्न) क्या जो यह जन्मपत्र है सो निष्फल है ?

(उत्तर) हां, वह जन्मपत्र नहीं किन्तु उसका नाम 'शोकपत्र' रखना चाहिये क्योंकि जब सन्तान का जन्म होता है तब सब को आनन्द होता है । परन्तु यह आनन्द तब तक होता है कि जब तक

जन्मपत्र बनके ग्रहों का फल न सुने । जब पुरोहित जन्मपत्र बनाने को कहता है तब उसके माता, पिता पुरोहित से कहते हैं—'महाराज! आप बहुत अच्छा जन्मपत्र बनाइये,' जो धनाढ्य हो तो बहुत सी लाल पीली रेखाओं से चित्र विचित्र और निर्धन हो तो साधारण रीति से जन्मपत्र बनाके सुनाने को आता है । तब उसके मां, बाप ज्योतिषी जी के सामने बैठ के कहते हैं— 'इसका जन्मपत्र अच्छा तो है' ? ज्योतिषी कहता है 'जो है सो सुना देता हूँ । इसके जन्मग्रह बहुत अच्छे और मित्रग्रह भी बहुत अच्छे हैं जिन का फल धनाढ्य और प्रतिष्ठावान्, जिस सभा में जा बैठेगा तो सब के ऊपर इसका तेज पड़ेगा । शरीर से आरोग्य और राज्यमानी होगा । इत्यादि बातें सुनके पिता आदि बोलते हैं—'वाह-वाह ज्योतिषी जी ! आप बहुत अच्छे हो'। ज्योतिषी जी समझते हैं इन बातों से कार्य्य सिद्ध नहीं होता। तब ज्योतिषी बोलता है कि 'ये ग्रह तो बहुत अच्छे हैं परन्तु ये ग्रह क्रूर हैं अर्थात् फलाने-फलाने ग्रह के योग से ८ वर्ष में इसका मृत्युयोग है ।' इसको सुन के माता पितादि पुत्र के जन्म के आनन्द को छोड़ के शोकसागर में डूब कर ज्योतिषी से कहते हैं कि 'महाराज जी ! अब हम क्या करें ?' तब ज्योतिषी जी कहते हैं—'उपाय करो।' गृहस्थ पूछे—'क्या उपाय करें ।' ज्योतिषी जी प्रस्ताव करने लगते हैं कि— 'ऐसा-ऐसा दान करो । ग्रह के मन्त्र का जप कराओ और नित्य ब्राह्मणों को भोजन कराओगे तो अनुमान है कि नवग्रहों के विघ्न हट जायेंगे ।' अनुमान शब्द इसलिये है कि जो मर जायेगा तो कहेंगे हम क्या करें परमेश्वर के ऊपर कोई नहीं है । हम ने तो बहुत सा यत्न किया और तुमने कराया, उसके कर्म ऐसे ही थे । और जो बच जाये तो कहते हैं कि देखो— हमारे मन्त्र, देवता और ब्राह्मणों की कैसी शक्ति है ? तुम्हारे लड़के को बचा दिया । यहाँ यह बात

होनी चाहिये कि जो इन के जप पाठ से कुछ न हो तो दूने तिगुणे रुपये उन धूर्त्तों से ले लेने चाहिये और बच जाय तो भी ले लेने चाहिये क्योंकि जैसे ज्योतिषियों ने कहा कि 'इसके कर्म और परमेश्वर के नियम तोड़ने का सामर्थ्य किसी का नहीं।' वैसे गृहस्थ भी कहें कि 'यह अपने कर्म और परमेश्वर के नियम से बचा है तुम्हारे करने से नहीं।' और तीसरे गुरु आदि भी पुण्य दान करा के आप ले लेते हैं तो उनको भी वही उत्तर देना, जो ज्योतिषियों को दिया था।

अब रह गई शीतला और मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र आदि। ये भी ऐसे ही ढोंग मचाते हैं। कोई कहता है कि 'जो हम मन्त्र पढ़ के डोरा वा यन्त्र बना देवें तो हमारे देवता और पीर उस मन्त्र यन्त्र के प्रताप से उसको कोई विघ्न नहीं होने देते।' उनको वही उत्तर देना चाहिये कि क्या तुम मृत्यु, परमेश्वर के नियम और कर्मफल से भी बचा सकोगे? तुम्हारे इस प्रकार करने से भी कितने ही लड़के मर जाते हैं और तुम्हारे घर में भी मर जाते हैं और क्या तुम मरण से बच सकोगे? तब वे कुछ भी नहीं कह सकते और वे धूर्त्त जान लेते हैं कि यहां हमारी दाल नहीं गलेगी। इससे इन सब मिथ्या व्यवहारों को छोड़कर धार्मिक, सब देश के उपकारकर्त्ता, निष्कपटता से सब को विद्या पढ़ाने वाले, उत्तम विद्वान् लोगों का प्रत्युपकार करना जैसा वे जगत् का उपकार करते हैं, इस काम को कभी न छोड़ना चाहिये। और जितनी लीला रसायन, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि करना कहते हैं उनको भी महापामर समझना चाहिये।

इत्यादि मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःखप्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे—'देखो जिसके शरीर में

सुरक्षित वीर्य रहता है तब उसको आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है । इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयीलोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्तसेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त होवें । जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुम को यह अमूल्य समय प्राप्त नहीं हो सकेगा । जब तक हम लोग गृहकर्मों के करने वाले जीते हैं तभी तक तुम को विद्या ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिये । इसी प्रकार की अन्य-अन्य शिक्षा भी माता और पिता करें ।

इसीलिये **'मातृमान् पितृमान्'** शब्द का ग्रहण उक्त वचन में किया है अर्थात् जन्म से ५वें वर्ष तक बालकों को माता, ६ वर्ष से ८वें वर्ष तक पिता शिक्षा करें और ९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन करके आचार्यकुल[१] में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहां लड़के और लड़कियों को भेज दें और शूद्रादि वर्ण उपनयन किये विना विद्याभ्यास के लिये गुरुकुल में भेज दें ।

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते किन्तु ताड़ना ही करते रहते हैं । इसमें व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण है—

सामृतैः पाणिभिर्घ्नन्ति गुरवो न विषोक्षितैः ।
लालनाश्रयिणो दोषास्ताडनाश्रयिणो गुणाः ।।

अर्थ—जो माता, पिता और आचार्य्य, सन्तान और शिष्यों का ताड़न करते हैं वे जानो अपने सन्तान और शिष्यों को अपने हाथ से अमृत पिला रहे हैं और जो सन्तानों वा शिष्यों का लाड़न करते हैं वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं । क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं और सन्तान और शिष्य लोग भी ताड़ना से प्रसन्न और लाड़न से अप्रसन्न सदा रहा करें । परन्तु माता, पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष, से ताड़न न करें किन्तु ऊपर से भयप्रदान और भीतर से कृपादृष्टि रक्खें ।

जैसी अन्य शिक्षा की वैसी चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्याभाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों के छोड़ने और सत्याचार के ग्रहण करने की शिक्षा करें। क्योंकि जिस पुरुष ने जिसके सामने एक बार चोरी, जारी, मिथ्याभाषणादि कर्म किया उसकी प्रतिष्ठा उसके सामने मृत्युपर्य्यन्त नहीं होती । जैसी हानि प्रतिज्ञा मिथ्या करने वाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं । इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी उसके साथ वैसे ही पूरी करनी चाहिये अर्थात् जैसे किसी ने किसी से कहा कि 'मैं तुम को वा तुम मुझ से अमुक समय में मिलूंगा वा मिलना अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुम को मैं दूंगा।' इसको वैसे ही पूरी करे, नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा, इसलिये सदा सत्यभाषण और सत्यप्रतिज्ञायुक्त सब को होना चाहिये । किसी को अभिमान करना योग्य नहीं, क्योंकि **'अभिमानः श्रियं हन्ति'** यह विदुरनीति का वचन

thearyasamaj.org

है। जो अभिमान अर्थात् अहङ्कार है वह सब शोभा और लक्ष्मी का नाश कर देता है, इस वास्ते अभिमान करना न चाहिये । छल, कपट वा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो दूसरे की क्या कथा कहनी चाहिये । छल और कपट उसको कहते हैं जो भीतर और बाहर और दूसरे को मोह में डाल और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना । 'कृतघ्नता' उसको कहते हैं कि किसी के किए हुए उपकार को न मानना । क्रोधादि दोष और कटुवचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे । जितना बोलना चाहिये उससे न्यून वा अधिक न बोले । बड़ों को मान्य दे उनके सामने उठ कर जा के उच्चासन पर बैठावे, प्रथम 'नमस्ते' करे। उनके सामने उत्तमासन पर न बैठे । सभा में वैसे स्थान मैं बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे । विरोध किसी से न करे । सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रक्खे । सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग, अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन और धनादि उत्तम-उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करे ।

यान्यस्माकꣳ सुचरितानि तानित्वयोपास्यानि नो इतराणि॥

यह तैत्ति० । इसका यह अभिप्राय है कि माता पिता आचार्य्य अपने सन्तान और शिष्यों को सदा सत्य उपदेश करें और यह भी कहें कि जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन-उनका ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो । जो-जो सत्य जाने उन-उनका प्रकाश और प्रचार करे। किसी पाखण्डी दुष्टाचारी मनुष्य पर विश्वास न करे और जिस-जिस उत्तम कर्म के लिए माता, पिता और आचार्य आज्ञा देवे उस-उसका यथेष्ट पालन करो । जैसे

thearyasamaj.org

माता, पिता ने धर्म, विद्या, अच्छे आचरण के श्लोक, 'निघण्टु' 'निरुक्त' 'अष्टाध्यायी' अथवा अन्य सूत्र वा वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों उन-उनका पुनः अर्थ विद्यार्थियों को विदित करावें । जैसे प्रथम समुल्लास में परमेश्वर का व्याख्यान किया है उसी प्रकार मानके उसकी उपासना करें । जिस प्रकार आरोग्य, विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन, छादन और व्यवहार करें करावें अर्थात् जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें । मद्य, मांसादि के सेवन से अलग रहें । अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें क्योंकि जलजन्तु वा किसी अन्य पदार्थ से दुःख और जो तैरना न जाने तो डूब ही सकता है । **'नाविज्ञाते जलाशये'** यह मनु का वचन । अविज्ञात जलाशय में प्रविष्ट होके स्नानादि न करें ।

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ।
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत् ।। मनु० ।।

अर्थ — नीचे दृष्टि कर ऊँचे नीचे स्थान को देखके चले, वस्त्र से छान के जल पीये, सत्य से पवित्र करके वचन बोले, मन से विचार के आचरण करे ।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ।।

यह किसी कवि का वचन है । वे माता और पिता अपने सन्तानों के पूर्ण वैरी हैं जिन्होंने उनको विद्या की प्राप्ति न कराई, वे विद्वानों की सभा में वैसे तिरस्कृत और कुशोभित होते हैं जैसे हंसों के बीच में बगुला । यही माता, पिता का कर्त्तव्य कर्म परमधर्म और कीर्ति का काम है जो अपने सन्तानों को तन, मन, धन से विद्या, धर्म, सभ्यता और उत्तम शिक्षायुक्त करना । ❁❁

मूर्ति पूजा की हानियां

यजुर्वेद के वचन हैं –

१. **अन्धन्तमः प्र विशन्ति ये असम्भूतिं उपासते ।**
ततो भूय इव ते तो य उसम्भूत्यां रताः ।। (४०.९)

२. **न तस्य प्रतिमा अस्ति ।** (३२.३)

जो अनुत्पन्न अनादि प्रकृति कारण की ब्रह्म के स्थान पर उपासना करते हैं, वे अंधकार अर्थात अज्ञान और दुःख सागर में डूबते हैं और जो कारण से उत्पन्न हुए कार्यरूप पृथ्वी आदि भूत, पाषाण और वृक्षादि अव्यव और मनुष्यादि के शरीर की उपासना ब्रह्म के स्थान में करते हैं वे उस अंधकार से भी अधिक अंधकार अर्थात महामूर्ख चिरकाल तक घोर दुःख रूप नरक में गिर के महाकलेश भोगते हैं ।

जो सब जगत में व्याप्त है उस निराकार परमेश्वर की प्रतिमा सादृष्य कभी नहीं हो सकती । परमेश्वर साकार है तो व्यापक व अनन्त नहीं हो सकता । यदि निराकार है तो उस की आकृति जो कल्पित की जायगी वह मिथ्या होगी, क्यों कि मूर्ति साकार, एक देशीय भौतिक पदार्थ की होती है सर्वव्यापक और निराकार की नहीं होती । सत्य स्वरूप परमेश्वर की मिथ्या मूर्ति बना कर पूजा करना मिथ्या और अनैतिक कर्म है ।

परमेश्वर इतना विराट है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उस में स्थित है ऐसे विराट को एक पाषाण की मूर्ति में ढ़ाल कर पूजा करना किसी प्रकार तर्कसंगत नहीं बैठता । परमात्मा केवल चेतन स्वरूप है

आनन्द स्वरूप है उस का कोई स्थूल शरीर नहीं तो फिर मूर्ति की यह पूजा पाषाण की है या मूर्तिकार की, परमेश्वर के नाम पर यह अनर्थ अनुचित है ।

वेदों का आदेश स्पष्ट है और वेदविहित कर्म ही धर्म है । वेद विरुद्ध आचरण अधर्म है। इस प्रकार मूर्ति पूजा घोर अधर्म है ।

मूर्ति पूजक एक ही तर्क मूर्ति पूजा के पक्ष में देते हैं कि परमेश्वर न काष्ठ में है न पाषाण में और न मृत्तिक के बनाये पदार्थों में है किन्तु परमेश्वर तो भाव में विद्यमान है, जहां श्रद्धा और विश्वास करें वहीं परमेश्वर प्रसिद्ध होते हैं ।

इस तर्क का खण्डन करने के लिये कहा जा सकता है कि जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो किसी एक वस्तु में ईश्वर की भावना करना और अन्यत्र न करना किसी प्रकार से भी उचित नहीं लगता। फिर ईश्वर को गणेश जी की मूर्ति में देखना और हनुमान जी की मूर्ति में न देखना, काबे में देखना और मदीने में न देखना, ईसा की मूर्ति में देखना और साई बाबा की मूर्ति में न देखना परस्पर ईष्या-द्वेष उत्पन्न करने का षड़यन्त्र बन जाता है । जब ईश्वर सर्व-व्यापक, आनन्द स्वरूप निराकार और बंधन रहित सर्वमुक्त है तो उसे मूर्तियों के परिमाण में कैद करना घोर अविद्या और अज्ञानता का लक्षण है । क्या केवल भावना मात्र से किसी वस्तु में वह गुण उत्पन्न किये जा सकते हैं जो उस में न हों ? क्या रेत में मैदे की भावना करने से रेत मैदा हो जाएगा ?

मूर्ति पूजा ज्ञानवान, विवेकशील व्यक्तियों के लिये निषिद्ध कर्म है क्योंकि :—

१. मनुष्य चेतन और मूर्ति जड़ । जड़ की पूजा से चेतन में ज्ञान

में कभी वृद्धि नहीं हो सकती । अपितु जो पूर्वज्ञान है वह भी नष्ट हो जाता है । मूर्ति के जड़त्व धर्म का प्रभाव अन्तःकरण द्वारा आत्मा पर भी होता है ।

२. मूर्ति पूजा किसी प्रकार भी मनुष्य जीवन के चार पुरूषार्थों (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) की सिद्धि में सहायक नहीं हो सकती। मूर्ति पूजा से अविद्या का आवरण और सुदृढ होता है। ज्ञान प्राप्ति से विवेक, विवेक से वैराग्य और वैराग्य से राग-द्वेष, मोह-ममता, अहंकार आदि वृत्तियों का निग्रह कर के ही यह पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं मूर्ति पूजा से नहीं ।

३. मूर्ति पूजा से ध्यान में स्थिरता और विचारों में विस्तार नहीं आता अपितु ध्यान कभी मूर्ति की कला कृति में और कभी उसी की साज-सज्जा में उलझा रहता है जिस से अनन्त निराकार ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव को ग्रहण करने की क्षमता और सामर्थ्य क्षीण हो जाता है ।

४. मूर्तिपूजा ईश्वर प्राप्ति की सीढ़ी नहीं जैसा कि मूर्ति पूजक कहते हैं बल्कि ऐसी गहरी अंधकारमय खाई है जिस में अज्ञानी एक बार गिरे तो निकल पाना दुष्कर है ।

५. मूर्ति की शक्ति में अन्धविश्वास करने से अपने आन्तरिक बल का भी ह्रास हो जाता है । मूर्ति पूजा के कारण ही भारत ने कई बार पराजय का मुँह देखा है यथा महमूद गजनवी के हाथों अनेकों लड़ाईयों में हार (सोमनाथ मन्दिर) का सामना करना पड़ा ।

६. मूर्तिपूजा ने अनेक मत-मतान्तरों को जन्म दिया है जिन के परस्पर वैर-विरोध ने हजारों वर्षों तक इस देश और राष्ट्र को खण्डित कर के रखा ।

७. मूर्ति पूजा आज एक अध्यात्मिक व्यापार बन चुका है जिसमें करोड़ों रूपये लगा कर भव्य मन्दिरों को निर्मित कर के और सुन्दर मूर्तियों को सजा कर श्रद्धालू भक्तों से अरबों रुपये ऐंठनें की योजनायें बनाई जाती हैं । मठाधीश और अन्य सेवक ऐश्वर्य पूर्ण जीवन जीते हैं । वे सभी दो व्यक्तित्व धारण किये रहते हैं । एक दिखावे का सौम्य और प्रभावशाली और दूसरा गुप्त, व्यसनयुक्त और घृणित ।

८. मन्दिरों में मूर्ति दर्शन के लिये आयोजित मेलों में स्त्री-पुरुषों की भीड़-भाड़ में व्याभिचार, लड़ाई-दंगे और रोग आदि के फैलने की अधिक सम्भावनायें होती हैं ।

९. पूजा शब्द का अर्थ है श्रद्धापूर्वक सत्कार । सत्कार गुणों और गुणियों का होना चाहिये । मूर्ति पूजा से भ्रमित हुए लोग अब माता, पिता, आचार्य और अतिथि की पूजा और सत्कार करना भी भूल गये हैं ।

१०. सर्वशक्तिमान परमेश्वर का प्रतीक मानी जाने वाली मूर्ति स्वयं की रक्षा भी नहीं कर सकती । कोई चाहे इसे चुरा ले, अंग भङ्ग कर दे या तोड़ दे, फिर इस की पूजा निरी मूर्खता ही तो हुई ।

११. परमेश्वर ने पुष्पादि वायु मण्डल को सुगन्धित करने, जल की दुर्गन्ध दूर करने और आरोग्यता के लिये बनाये हैं । उन को तोड़ना, मूर्ति पर चढ़ाना और पश्चात् सड़ने के लिये फैंक देना ईश्वर प्रयोजन का विरोध ही तो है ।

इस प्रकार स्पष्ट ही मूर्तिपूजा की अनेकानेक हानियां हैं अतः बुद्धिजीवियों के लिये यह प्रथा योग्य नहीं है । ◈◈

thearyasamaj.org

विवाह से पूर्व सावधानियाँ

महर्षि दयानन्द स्वयं बालब्रह्मचारी थे परन्तु लोक हितार्थ उन्होंने विवाह से पूर्व आवश्यक सावधानियों के सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में विस्तार से लिखा है :

निम्न बातें विवाह से पूर्व विचारनीय हैं –

१. यह सुनिश्चित कर लेना चाहिये कि वर एवं वधु ने ब्रह्मचर्य आश्रम का धर्म निभाते हुए उच्च या सामान्य विद्या ग्रहण की है या नहीं । वेद और आर्ष शास्त्रों का अध्ययन अर्थ सहित करने के पश्चात् गृहस्थ में प्रवेश करना चाहिये । आज के युग में कोई व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने पर भी ध्यान देना चाहिये या वर का गृहस्थ चलाने के लिये आय का समुचित साधन हैं या नहीं इस बात पर ध्यान देना चाहिये ।

२. कन्या की आयु कम से कम १६ वर्ष और वर की आयु २५ वर्ष होनी चाहिए। उत्तम विवाह के लिये लड़की २४ वर्ष तक और लड़का/वर ४८ वर्ष का होना चाहिए! दोनों की आयु तुल्य होना उचित नहीं है ।

३. मनु महाराज का श्लोक उद्धृत करते हुए महर्षि लिखते हैं, "चाहे लड़का-लड़की मरण पर्यन्त कुमारे रहें, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण-कर्म-स्वभाव वालों का विवाह कभी नहीं होना चाहिए ।"

४. कन्या माता के कुल की छः पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो, उसी कन्या से विवाह उचित है । इस का प्रयोजन बताते हुए ऋषि शतपथ का सूत्र उद्धृत करते हैं ।

thearyasamaj.org

"प्रोक्षप्रिया इव हि देवाः प्रत्यक्ष द्विषः"।

जैसी परोक्ष पदार्थ से प्रीति होती है, वैसी प्रत्यक्ष से नहीं । इसलिये जो निकट सम्बन्ध से न हो उस के प्रति आकर्षण अधिक होगा ।

५. महर्षि ने ऐसे दस कुलों का उल्लेख किया है जिन में धन, धान्य, गाय, अजा, हाथी, घोड़े, राज्य, श्री आदि से समृद्ध होने पर भी विवाह नहीं करना चाहिए ।

"जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदा-ध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े लोम अथवा लोम रहित अथवा बवासीर, क्षयी, (दमा, खांसी) आमाशय, मिरगी, श्वेतकुष्ठ और गलित कुष्ठयुक्त कुलों की कन्या व वर के साथ विवाह न होना चाहिये क्यों कि यह सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले के कुल में भी प्रविष्ट हो जायेंगे । इसलिये विवाह के लिये भी तुल्य कुल देखने चाहियें ।

६. महर्षि ने दो कुलों के मध्य विवाह के विषय को आगे बढ़ाते हुए निकट कुल में विवाह का निषेध किया है। वे लिखते हैं–

(क) जैसे पानी में पानी मिलने से विलक्षण गुण नहीं आता, वैसे एक गोत्र पितृ का मातृकुल में विवाह होने से धातुओं के अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती ।

(ख) जैसे दूध में मिश्री व शुण्ठयादि औषधियों के योग होने से उत्तमता आती है, वैसे ही भिन्न-भिन्न गोत्र पितृ-मातृ कुल से पृथक वर्तमान स्त्री-पुरुष का विवाह होना चाहिये ।

७. महर्षि ने विवाह से पहले वर-वधु के स्वास्थ्यादि को विशेष रूप से ध्यान से देखने के लिये कहा है । जिनका स्वास्थ्य बेमेल हो उनका विवाह भी नहीं करना चाहिए । जब वर

अथवा वधु के अंग न्यून-अधिक हों, या वर्ण पीला हो, अथवा भूरे नेत्र हों अथवा वाणी मृदु न हो उनका विवाह कदापि नहीं करना चाहिये ।

८. ऋषि ने लिखा है कि विवाह से पूर्व नक्षत्रों, वृक्षों, नदियों, पर्वतों व पक्षियों के नाम वाली कन्याओं पर भी विवाह से पूर्व गहन विचार करना चाहिए यदि अतित्तम गुण युक्त न हों तो विवाह न किया जाय ।

९. महर्षि ने विवाह के लिये उत्तम कन्या के नैन-नक्श का भी वर्णन किया है ।

"जिस के सरल सूधे अंग हों, विरुद्ध न हों, जिस का नाम सुन्दर हो अर्थात याशोधरा, सुखदा आदि और हंस और हथिनी के तुल्य जिस की चाल हो, सूक्ष्म लोम और केश एवं दांतयुक्ता और जिसके सब अंग कोमल हों, वैसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए ।

१०. महर्षि निकट विवाह की अपेक्षा दूर का विवाह अच्छा मानते हुए निम्न तर्क देते हैं ।

(क) "जो बालक बाल्यावस्था में निकट रहते, परस्पर क्रीड़ा, लड़ाई, प्रेम करते, एक दूसरे के गुण, दोष, स्वभाव, बाल्यावस्था के विपरीत आचरण जानते हों और जो नंगे भी एक दूसरे को देखते रहे हों, उन का परस्पर विवाह होने से प्रेम कभी नहीं हो सकता ।

(ख) निकट विवाह होने से एक दूसरे के निकट होने से सुख-दुःख का भान और विरोध होना भी सम्भव है, दूरदेशस्थी में नहीं। दूरस्थों के विवाह दूर-दूर प्रेम की डोरी लम्बी बढ़ जाती है निकटस्थ विवाह में नहीं ।

(ग) महर्षि निरुक्त को उद्धृत करते हुए लिखते हैं —

"दुहिता-दुहिता दुरेहिता भवतीति ।"

कन्या का नाम दुहिता इस लिये है कि इस का विवाह दूरदेश में होने से हितकारी होता है, निकट करने से नही ।

(घ) कन्या के कुल में दारिद्रय होना भी सम्भव है । क्योंकि जब-जब कन्या पितृकुल में आवेगी तब-तब उस को कुछ न कुछ तो देना ही पड़ेगा ।

(ङ) निकट विवाह होने से एक-दूसरे को अपने-अपने पितृ कुल के सहाय का घमण्ड और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा तब स्त्री झट पिता के कुल में चली जायेगी । एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी और विरोध भी । इस से गृह कलह बढ़ने की अधिक सम्भावना रहती है ।

(च) जैसे एक देश में रोगी हो वह दूसरे देश में वायु और खान-पान के बदलने से रोग मुक्त हो जाता है वैसे ही दूर देशस्थ विवाह होने में उत्तमता है ।

निष्कर्श देते हुए महर्षि लिखते हैं —

"जब स्त्री पुरुष विवाह करना चाहें तब विद्या, विनय, शील, रूप, गुण, आयु, बल, कुल, शरीर का परिमाणादि यथा-योग्य होना चाहिए । जब तक इन का मेल नहीं होता तब तक विवाह में कुछ भी सुख नहीं होता ।"

इस प्रकार जीवन के इस महत्वपूर्ण निर्णय से पूर्व स्वयं लड़के-लड़की और माता-पिता को इन सावधानियों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए । एक दूसरे की सम्पूर्ण मैडीकल रिपोर्ट भी लेनी चाहिए ।

◈◈◈◈◈

बाईबल की कहानियाँ

बाईबल में यीशू मसीह ने प्रभु के प्रति लोगों का विश्वास जमाने और स्वयं को प्रभु पुत्र के नाते स्थापित करने के लिये अनेक भ्रामिक कहानियां दी हैं इनमें से कुछ संक्षेप में दी जा रही हैं :-

१. तब परमेश्वर ने आदम को भूमि की धूलि से बनाया और उसके नथुनों में जीवन का श्वास फूँका और आदम चेतन हो गया । तब परमेश्वर ने अदन में पूर्व की ओर एक बारी (बगीची) लगाई और उस आदम को उस बारी में रख कर सुला दिया । तब उस बारी के मध्य में जीवन का पेड़ और भले-बुरे के ज्ञान का पेड़ भूमि से उगाया ।

आदम को गहरी नींद सुला कर ईश्वर ने उसकी पसलियों में से एक पसली निकाली और उससे नारी बनाई और उसे भी आदम के पास सुला दिया ।

फिर एक दिन शैतान ने सर्प रूप में आकर स्त्री को कहा, "ईश्वर ने तुम्हें सब पेड़ों के फल खाने को कहा है परन्तु उस बारी के मध्य वाले पेड़ को फल खाने से रोका है क्योंकि ईश्वर नहीं चाहता कि तुम्हें भले-बुरे के भेद का ज्ञान हो जाये और तुम ईश्वर के समान हो जाओ ।" नारी ने सर्प के कहने पर उस बारी में लगे पेड़ के फल खाये और अपने पति आदम को भी खिलाये । फल खाते ही उनमें विवेक जागृत हो गया। पश्चात् ईश्वर ने पुरुष और स्त्री (आदम और हौआ) को आज्ञा भंग करने का दोषी कहकर स्वर्ग से पृथ्वी पर फैंक

thearyasamaj.org

दिया । फिर सर्प को यह षड़यन्त्र रचने के कारण अभिशाप दिया कि तुम सदैव पेट के बल चलोगे ।"

२. एक बार परमेश्वर अपने दो साथियों के साथ वहां गया जहां अब्राहम अपने परिवार के साथ तम्बू में रह रहा था। अब्राहम ने उनका बड़ा आदर-सत्कार किया और उनसे आतिथ्य स्वीकार करने का आग्रह किया । ईश्वर और उसके साथियों के लिये अब्राहम ने सरः से कहकर मक्खन, दूध और बछड़ा पकवाया और स्वयं उनकी सेवा में खड़ा रहा ।

तृप्त होने के पश्चात् ईश्वर ने अब्राहम से पूछा "सरः क्यों यह कह रही थी कि मैं जो बुढ़िया हो गई हूँ अब मैं क्या बालक जनूंगी । क्या परमेश्वर के लिये कोई बात असाध्य है ?" कुछ समय पश्चात् अपना वचन निभाने के लिए ईश्वर ने सरः से समागम किया और वह गर्भिनी हुई ।

३. एक बार यीशू अपने शिष्यों के साथ नाव में बैठकर झील के पार जा रहे थे । यीशू नाव के पिछले भाग में सो रहे थे । अनायास झील में भारी तूफान आया । सब शिष्य भयभीत हो गये । नावें डांवाडोल होने लगी और उनमें पानी भरने लगा । शिष्यों ने घबराकर यीशू को जगाया । यीशू उठे, उन्होंने आंधी को डांटा और झील से कहा, "शान्त हो । थम जा ।" आंधी थम गई और झील शान्त हो गई ।

४. माईर सभागृह का एक अधिकारी था । वह यीशु के पास आया और पैरों पर गिरकर कहने लगा,"मेरी पुत्री मरणावस्था में है चलकर उसे छू दें तो वह बच जायेगी ।"

यीशु शिष्यों के साथ उसके घर की ओर चले । रास्ते में एक

रूग्न स्त्री, जिसके शरीर से खून रिसता रहता था, ने उनके वस्त्र को छू लिया और उसका रोग दूर हो गया । जब यीशू माईर के घर पहुँचे तो सूचना मिली कि उसकी पुत्री का निधन हो गया है । यीशु सीधे लड़की के पास पहुँचे और उसको हाथ पकड़कर बोले, "लड़की । मैं तुमसे कहता हूँ उठ ।" उनके ऐसा कहते ही लड़की उठ खड़ी हुई । लोग आश्चर्यचकित होकर यीशू के पाँव पर गिरकर स्तुति करने लगे ।

५. एक बार यीशु अपने शिष्यों और लोगों की भीड़ के साथ यात्रा पर थे । यात्रा करते तीन-चार दिन बीत गये थे । लोगों की खाद्य सामग्री समाप्त हो गई थी । वे भूख से व्याकुल हो रहे थे । यीशु ने अपने शिष्यों से पूछा आपके पास कितना भोजन बचा है ? शिष्यों ने बताया कि केवल सात रोटियां और कुछ मछलियां बची हैं । यीशु ने लोगों को बैठने के लिये कहा और शिष्यों को उन्हें भोजन कराने का आदेश दिया । लोग चार हजार थे और रोटियां सात। यीशु ने रोटियों के टुकड़े किये और सब को बांटने को कहा । शिष्यों ने खुले दिल से रोटियां बांटी और मछलियां भी खिलाई । सब तृप्त हो गये परन्तु सात रोटियां और मछलियां बची रही । लोगों ने यीशु का गुणगान करते हुए बहुत-बहुत कृतज्ञता प्रकट की और उनके शिष्य बन गये ।

६. एक बार यीशु अपने शिष्यों पतरस, याकूब और युहन्ना के साथ एक ऊँचे पर्वत पर गये । वहां शिष्यों के सामने ही यीशु का रूप एक दम बदल गया । उनके वस्त्र एकदम दमदमाते हुए हो गये । शिष्यों को एलियाह और मूसा भी वहां दिखाई

thearyasamaj.org

दिये जो यीशु से बातें कर रहे थे । सभी शिष्य हतप्रभ रह गये । तब अनायास ही आकाश और पृथ्वी बादलों से ढक गये । बादलों में से आवाज आई, "यीशु मेरा प्रिय पुत्र है । इसकी शिक्षा सुनो । शिष्यों ने तुरन्त चारों ओर दृष्टि घुमाई तो उन्हें सिवाय यीशु के और कुछ दिखाई नहीं दिया ।"

७. यीशु ने तीन बार अपनी मृत्यु की भविष्यवाणी की । तीसरी बार वह अपने शिष्यों के साथ यरूशलेम की ओर बढ़ रहे थे । यीशु सबसे आगे थे । शिष्य आश्चर्यचकित थे और साथ चलने वाले लोग भयभीत थे । यीशु बारह शिष्यों को अलग ले गये और बोले, " देखो । हम यरूशलेम जा रहे हैं । वहां मानव पुत्र (यीशु) को महापुरोहितों और धर्म शिक्षकों को सौंपा जायेगा । वे उसे मृत्यु दण्ड के योग्य ठहरायेंगे । वे उसे गैर यहूदियों के हाथ में सौंपेंगे। वे उसका मज़ाक उड़ायेंगे, उस पर थूकेंगें, उसको कोड़े लगवायेंगें और उसे मार डालेंगे । परन्तु वह तीन दिन बाद फिर जीवित हो जायेगा ।" शिष्य यह बातें सुनकर स्तब्ध रह गये और यीशु की दीर्घ आयु के लिये प्रभु से प्रार्थना करने लगे ।

thearyasamaj.org

सामान्य ज्ञान व इकावन मान्यताएँ

१. **वेद** – १. ऋग्वेद, २. यजुर्वेद, ३. सामवेद, ४. अथर्ववेद

२. **उपनिषद** – १. ईशोपनिषद, २. केन उपनिषद, ३. कठोपनिषद, ४. प्रश्न उपनिषद, ५. मुण्डक उपनिषद, ६. माण्डूक्य उपनिषद, ७. तैतिरेयउपनिषद, ८. ऐतरेय उपनिषद, ९. छांदोग्य उपनिषद, १०. वृहदरण्यक उपनिषद ।

३. **दर्शन** – १. पूर्व मीमांसा दर्शन, २. वैशेषिक दर्शन, ३. न्याय दर्शन, ४. योग दर्शन, ५. सांख्य दर्शन, ६. वेदान्त दर्शन

४. **स्मृति** – इस समय सौ से अधिक प्रसिद्ध स्मृतियां है परन्तु महर्षि केवल **'मनुस्मृति'** को ही वेदानुकूल मानते हैं। अन्य प्रमुख स्मृतियां नीचे दी जा रही हैं ।

१. याज्ञवल्क्य स्मृति, २. अत्रेय स्मृति, ३. कात्यायन स्मृति, ४. पराशर स्मृति, ५. वसिष्ठ स्मृति, ६. गौतम स्मृति, ७. यम स्मृति, ८. प्रजा पति स्मृति, ९. व्यास समृति, १०. वृहस्पति स्मृति, ११. शङ्ख स्मृति, १२. लिखित स्मृति ।

५. **ब्राह्मण ग्रन्थ** – १. ऐतरेय ब्राह्मण ग्रन्थ, २. शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थ, ३. साम ब्राह्मण ग्रन्थ, ४. गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थ ।

६. **नव द्रव्य** – १. पृथ्वी, २.जल, ३. तेज, ४. वायु, ५. मन, ६. आत्मा, ७. आकाश, ८. काल, ९. दिशा

७. **चौबीस गुण** – १. रूप, २. रस, ३. गन्ध, ५. स्पर्श, ५. संख्या, ६. परिमाण, ७.पृथकत्व, ८. संयोग, ९. विभाग, १०. परत्व, ११. अपरत्व, १२. बुद्धि, १३. सुख, १४. दुःख,

thearyasamaj.org

१५. इच्छा, १६. द्वेष, १७. प्रयत्न, १८. गुरुत्व, १९. द्रवत्व, २०. स्नेह, २१. संस्कार, २२. धर्म, २३. अधर्म २४. शब्द

८. **जीवात्मा की चौबीस शक्तियां** - १. बल, २. पराक्रम, ३. आकर्षण, ४. प्रेरणा, ५. गति, ६. भीषण, ७. विवेचन, ८. क्रिया, ९. उत्साह, १०.स्मरण, ११. निश्चय, १२. इच्छा, १३. प्रेम, १४. द्वेष, १५. संयोग, १६. विभाग, १७. संयोजक, १८. विभाजक, १९. श्रवण, २०. स्पर्शन, २१. दर्शन, २२. स्वादन, २३. गन्ध ग्रहण, २४. ज्ञान ।

९. **आठ प्रमाण** - १. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. उपमान, ४. शब्द, ५. ऐतिह्य, ६. अर्थापत्ति, ७. सम्भव, ८. अभाव

१०. **योग के आठ अंग** - १. यम, २. नियम, ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारणा, ७. ध्यान, ८. समाधि ।

११. **न्याय दर्शन के सोलह पदार्थ** - १. प्रमाण, २. प्रमेय, ३. संशय, ४. प्रयोजन, ५. दृष्टान्त, ६. सिद्धान्त, ७. अवयव, ८. तर्क, ९. निर्णय, १०. वाद, ११. जल्द, १२. वितण्डा, १३. हेत्वाभास, १४. छल, १५. जाति, १६. निग्रहस्थान ।

१२. **सूत्र ग्रन्थ** - कल्पसूत्र ग्रन्थों की चार मुख्य शाखायें हैं - १. श्रौत सूत्र, २. गृह्य सूत्र, ३. धर्म सूत्र, ४. शुल्ब सूत्र, महर्षि दर्शनों को भी सूत्र ग्रन्थ ही गिनते हैं । इन के अतिरिक्त सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में कुछ आर्ष सूत्र ग्रन्थों के नाम दिये हैं जो इस प्रकार से हैं ।

१. पूर्व मीमांसा पर व्यासमुनिकृत व्याख्या।
२. वैशेषिक पर गौतम मुनिकृत प्रशस्त पाद भाष्य।

thearyasamaj.org

३. गौतम मुनिकृत न्याय सूत्र पर वात्स्यायन मुनिकृत भाष्य।
४. पतञ्जलि मुनिकृत योग सूत्र पर व्यास मुनि कृत भाष्य।
५. कपिल मुनिकृत सांख्य सूत्र पर भागुरिमुनिकृत भाष्य।
६. व्यास मुनि कृत वेदान्त सूत्र पर वात्स्यायन कृत भाष्य
७. बौधायन मुनि कृत वृत्ति सूत्र ग्रन्थ।

१३. महत्वपूर्ण संख्याएँ

वेद मंत्र = २०३४९, अनादि वस्तुएं - ईश्वर, जीव, प्रकृति-३ योग दर्शन के सूत्र-१९५, न्याय दर्शन के सूत्र-४५०, सांख्य दर्शन के सूत्र-४५१, ईश्वर के गौण नाम-असंख्य, देवता-३३, रुद्र-११, आदित्य-१२, ज्ञाननेन्द्रियां-५, कर्मेन्द्रियां-५, मन-१, प्राण-५, उपप्राण-५, दिशायें-१०, संस्कृत की विभक्तियां-७, संस्कृत के लकार-१०, क्लेश-५, क्लेशों की अवस्थाएं-(५), शरीर की अवस्थाएं-४, प्राणायाम-४, संस्कार-१६, वेद की शाखाएं-११२७, वेद मन्त्रों के शब्द (अक्षर)-७६८०००

१४ स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश (महर्षि दयानन्द के ५१ मन्तव्य/पदार्थ/मान्यताएं)

ईश्वर, वेद, धर्म, अधर्म, जीव, जीव-ईश्वर में भिन्नता-अभिन्नता, अनादि पदार्थ, प्रवाह से अनादि, सृष्टि, सृष्टि का प्रयोजन, सृष्टि सकर्तृक, बन्ध, मुक्ति, मुक्ति के साधन, अर्थ-अनर्थ, काम, वर्णाश्रम, राजा, प्रजा, न्यायकारी, देव-असुर-राक्षस- पिशाच, शिक्षा, पुराण, तीर्थ, पुरुषार्थ, मनुष्य, संस्कार, यज्ञ, आर्य-दस्यु, आर्य्यवर्त्त, आचार्य, शिष्य, गुरु, पुरोहित, उपाध्याय, शिष्टाचार, प्रमाण, आप्त, ५-परीक्षाएं, स्वतन्त्र-परतन्त्र, स्वर्ग, नरक, जन्म-मृत्यु, विवाह, नियोग, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सगुण निर्गुण, स्तुति प्रार्थनोपासना । इनके अर्थ :—

thearyasamaj.org

१—प्रथम **'ईश्वर'** कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं, जो सच्चिदानन्दादि लक्षणयुक्त है, जिसके गुण, कर्म स्वभाव पवित्र हैं। जो सर्वज्ञ, निराकार, सर्वव्यापक, अजन्मा, अनन्त, सर्वशक्तिमान्, दयालु, न्यायकारी, सब सृष्टि का कर्त्ता, धर्त्ता, हर्त्ता, सब जीवों को कर्मानुसार सत्य न्याय से फलदाता आदि लक्षणयुक्त है; उसी को परमेश्वर मानता हूँ।

२—चारों **'वेदों'** (विद्या धर्मयुक्त ईश्वरप्रणीत संहिता मन्त्रभाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं। वे स्वयं प्रमाणरूप हैं कि जिनके प्रमाण होने में किसी अन्य ग्रन्थ की अपेक्षा नहीं। जैसे सूर्य्य वा प्रदीप अपने स्वरूप के स्वतःप्रकाशक और पृथिव्यादि के भी प्रकाशक होते हैं वैसे चारों वेद हैं। और चारों वेदों के ब्राह्मण, छःअङ्ग, छः उपाङ्ग, चार उपवेद और ११२७ (ग्यारह सौ सत्ताईस) वेदों की शाखा जो कि वेदों के व्याख्यान रूप ब्रह्मादि महर्षियों के बनाये ग्रन्थ हैं उनको परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेदविरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूं।

३—जो पक्षपातरहित, न्यायाचरण, सत्यभाषणादि युक्त ईश्वराज्ञा, वेदों से अविरुद्ध है उसको **'धर्म'** और जो पक्षपातसहित अन्यायाचरण मिथ्याभाषणादि ईश्वराज्ञाभङ्ग, वेदविरुद्ध हैं उसको **'अधर्म'** मानता हूँ।

४—जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि गुणयुक्त अल्पज्ञ नित्य है उसी को **'जीव'** मानता हूँ।

५—**जीव और ईश्वर** स्वरूप और वैधर्म्य से भिन्न और व्याप्यव्यापक, और साधर्म्य से अभिन्न हैं अर्थात् जैसे आकाश से मूर्त्तिमान् द्रव्य कभी भिन्न न था, न है, न होगा और न कभी एक था,

thearyasamaj.org

न है, न होगा इसी प्रकार परमेश्वर और जीव को व्याप्य-व्यापक, उपास्य-उपासक और पिता-पुत्र आदि सम्बन्धयुक्त मानता हूँ ।

६—**'अनादि पदार्थ'** तीन हैं। **एक ईश्वर, द्वितीय जीव, तीसरा प्रकृति** अर्थात् जगत् का कारण, इन्हीं को नित्य भी कहते हैं । जो नित्य पदार्थ हैं **उनके** गुण, कर्म, स्वभाव भी नित्य हैं।

७—**'प्रवाह से अनादि'** जो संयोग से द्रव्य, गुण, कर्म उत्पन्न होते हैं, वे वियोग के पश्चात् नहीं रहते परन्तु जिससे प्रथम संयोग होता है वह सामर्थ्य उनमें अनादि है और उससे पुनरपि संयोग होगा तथा वियोग भी, इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ ।

८—**'सृष्टि'** उसको कहते हैं जो पृथक् द्रव्यों का ज्ञान युक्तिपूर्वक मेल होकर नानारूप बनना ।

९—**'सृष्टि का प्रयोजन'** यही है कि जिसमें ईश्वर के सृष्टिनिमित्त गुण, कर्म, स्वभाव का साफल्य होना । जैसे किसी ने कि सी से पूछा कि नेत्र किस लिये हैं ? उसने कहा देखने के लिये। वैसे ही सृष्टि करने के ईश्वर के सामर्थ्य की सफलता सृष्टि करने में है और जीवों के कर्मों का यथावत् भोग कराना आदि भी ।

१०—**'सृष्टि सकर्तृक'** है। इसका कर्त्ता पूर्वोक्त ईश्वर है । क्योंकि सृष्टि की रचना देखने और जड़ पदार्थ में अपने आप यथायोग्य बीजादि स्वरूप बनने का सामर्थ्य न होने से **सृष्टि का 'कर्त्ता'** अवश्य है ।

११—**'बन्ध'** सनिमित्तक अर्थात् अविद्या निमित्त से है। जो-जो पाप कर्म ईश्वरभिन्नोपासना अज्ञानादि सब दुःख फल करने वाले हैं इसी लिये यह **'बन्ध'** है कि जिस की इच्छा नहीं और भोगना पड़ता है ।

१२—**'मुक्ति'** अर्थात् सर्व दुःखों से छूटकर बन्धरहित सर्वव्यापक ईश्वर और उसकी सृष्टि में स्वेच्छा से विचरना, नियत समय पर्यन्त मुक्ति के आनन्द को भोग के पुनः संसार में आना ।

१३—**'मुक्ति के साधन'** ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान, ब्रह्मचर्य से विद्या प्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं ।

१४—**'अर्थ'** वह है कि जो धर्म ही से प्राप्त किया जाय और जो अधर्म से सिद्ध होता है उसको **'अनर्थ'** कहते हैं ।

१५—**'काम'** वह है कि जो धर्म और अर्थ से प्राप्त किया जाय।

१६—**'वर्णाश्रम'** गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ ।

१७—**'राजा'** उसी को कहते हैं जो शुभ गुण, कर्म, स्वभाव से प्रकाशमान, पक्षपातरहित न्यायधर्म का सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्ते और उनको पुत्रवत् मान के उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा यत्न किया करे ।

१८—**'प्रजा'** उसको कहते हैं कि जो पवित्र गुण, कर्म, स्वभाव को धारण कर के पक्षपातरहित न्याय धर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राजविद्रोहरहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्ते ।

१९—जो सदा विचार कर असत्य को छोड़ सत्य का ग्रहण करे, अन्यायकारियों को हठावे और न्यायकारियों को बढ़ावे, अपने आत्मा के समान सबका सुख चाहे सो **'न्यायकारी'** है; उसको मैं भी ठीक मानता हूँ ।

२०—**'देव'** विद्वानों को और अविद्वानों को **'असुर'** पापियों को **'राक्षस'** अनाचारियों को **'पिशाच'** मानता हूँ।

thearyasamaj.org

२१—उन्हीं **विद्वानों**, **माता**, **पिता**, **आचार्य्य**, **अतिथि**, **न्यायकारी राजा** और **धर्मात्मा जन**, **पतिव्रता स्त्री** और **स्त्रीव्रत पति** का सत्कार करना **'देवपूजा'** कहाती है । इससे विपरीत **अदेवपूजा**, इनकी मूर्तियों को पूज्य और इतर पाषाणादि जड़मूर्तियों को सर्वथा अपूज्य समझता हूँ ।

२२—**'शिक्षा'** जिससे विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं ।

२३—**'पुराण'** जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि ब्राह्मण पुस्तक हैं उन्हीं को **पुराण**, **इतिहास**, **कल्प**, **गाथा** और **नाराशंसी** नाम से मानता हूँ; अन्य भागवतादि को नहीं ।

२४—**'तीर्थ'** जिससे दुःखसागर से पार उतरें कि जो **सत्यभाषण**, **विद्या**, **सत्संग**, **यमादि**, **योगाभ्यास**, **पुरुषार्थ**, **विद्यादानादि शुभ कर्म** है उसी को **तीर्थ** समझता हूँ; इतर जलस्थलादि को नहीं ।

१५—**'पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा'** इसलिये है कि जिससे सञ्चित प्रारब्ध बनते जिसके सुधरने से सब सुधरते और जिसके बिगड़ने से सब बिगड़ते हैं इसी से प्रारब्ध की अपेक्षा पुरुषार्थ बड़ा है ।

२६—**'मनुष्य'** को सब से यथायोग्य स्वात्मवत् सुख, दुःख, हानि, लाभ में वर्त्तना श्रेष्ठ; अन्यथा वर्त्तना बुरा समझता हूँ।

२७—**'संस्कार'** उसको कहते हैं कि जिससे शरीर, मन और आत्मा उत्तम होवे। वह निषेकादि श्मशानान्त सोलह प्रकार का है। इसको कर्त्तव्य समझता हूँ और दाह के पश्चात् मृतक के लिये कुछ भी न करना चाहिये ।

२८—**'यज्ञ'** उसको कहते हैं कि जिसमें विद्वानों का सत्कार यथायोग्य **शिल्प** अर्थात् **रसायन** जो कि पदार्थ विद्या उससे उपयोग

और विद्यादि **शुभगुणों का दान अग्निहोत्रादि** जिन से **वायु**, **वृष्टि**, **जल**, **ओषधि** की **पवित्रता करके** सब जीवों को सुख पहुँचाना है; उसको उत्तम समझता हूँ।

२९—जैसे **'आर्य्य'** श्रेष्ठ और **'दस्यु'** दुष्ट मनुष्यों को कहते हैं वैसे ही मैं भी मानता हूँ।

३०—**'आर्य्यावर्त्त'** देश इस भूमि का नाम इस लिये है कि इसमें आदि सृष्टि से आर्य्य लोग निवास करते हैं परन्तु इसकी अवधि **उत्तर में हिमालय**, **दक्षिण में विन्ध्याचल**, **पश्चिम में अटक** और **पूर्व में ब्रह्मपुत्रा नदी** है। इन चारों के बीच में जितना देश है उसको **'आर्यावर्त्त'** कहते और जो इसमें सदा रहते हैं उनको भी आर्य कहते हैं ।

३१—जो **साङ्गोपाङ्ग वेदविद्याओं का अध्यापक** सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह **'आचार्य'** कहाता है ।

३२—**'शिष्य'** उसको कहते हैं कि जो सत्य शिक्षा और विद्या को ग्रहण करने योग्य धर्मात्मा, विद्याग्रहण की इच्छा और आचार्य का प्रिय करने वाला है ।

३३—**'गुरु' माता पिता** और जो सत्य का ग्रहण करावे और असत्य को छुड़ावे वह भी **'गुरु'** कहाता है ।

३४—**'पुरोहित'** जो यजमान का हितकारी सत्योपदेष्टा होवे।

३५—**'उपाध्याय'** जो वेदों का एकदेश वा अङ्गों को पढ़ाता हो ।

३६—**'शिष्टाचार'** जो धर्माचरणपूर्वक ब्रह्मचर्य से विद्याग्रहण कर प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना है यही शिष्टाचार और जो इसको करता है वह **'शिष्ट'** कहाता है ।

३७—प्रत्यक्षादि **आठ 'प्रमाणों'** को भी मानता हूँ ।

३८—**'आप्त'** जो यथार्थवक्ता, धर्मात्मा, सब के सुख के लिये प्रयत्न करता है उसी को **आप्त कहता** हूँ।

३९—**'परीक्षा'** पांच प्रकार की है । इसमें से जो ईश्वर उसके गुण, कर्म ,स्वभाव और वेदविद्या, **दूसरी प्रत्यक्षादि** आठ प्रमाण, तीसरी सृष्टि क्रम, चौथी आप्तों का व्यवहार और पांचवीं अपने आत्मा की पवित्रता विद्या, इन पांच परीक्षाओं से सत्याऽसत्य का निर्णय कर के सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करना चाहिये।

४०—**'परोपकार'** जिससे सब मनुष्यों के दुराचार दुःख छूटें, श्रेष्ठाचार और सुख बढ़े उसके करने को परोपकार कहता हूँ ।

४१—**'स्वतन्त्र' परतन्त्र'** जीव अपने कामों में स्वतन्त्र और कर्मफल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था से परतन्त्र वैसे ही ईश्वर अपने सत्याचार आदि काम करने में स्वतन्त्र है ।

४२—**'स्वर्ग'** नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है ।

४३—**'नरक'** जो दुःख विशेष भोग और उसकी सामग्री को प्राप्त होना है ।

४४—**'जन्म'** जो शरीर धारण कर प्रकट होना सो पूर्व, पर और मध्य भेद से तीनों प्रकार का मानता हूँ ।

४५—'शरीर के संयोग का नाम **'जन्म'** और वियोग मात्र को **मृत्यु'** कहते हैं।

४६—**'विवाह'** जो नियमपूर्वक प्रसिद्धि से अपनी इच्छा कर के पाणिग्रहण करना वह 'विवाह' कहाता है ।

४७—**'नियोग'** विवाह के पश्चात् पति के मर जाने आदि वियोग में अथवा नपुंसकत्वादि स्थिर रोगों में स्त्री वा पुरुष आपत्काल में स्ववर्ण वा अपने से उत्तम वर्णस्थ स्त्री वा पुरुष के साथ सन्तानोत्पत्ति करना।

४८—**'स्तुति'** गुणकीर्त्तन श्रवण और ज्ञान होना इस का फल प्रीति आदि होते हैं।

४९—**'प्रार्थना'** अपने सामर्थ्य के उपरान्त ईश्वर के सम्बन्ध से जो विज्ञान आदि प्राप्त होते हैं **उनके** लिये ईश्वर से याचना करना और इसका फल निरभिमान आदि होता है।

५०—**'उपासना'** जैसे ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव पवित्र हैं वैसे अपने करना, ईश्वर को सर्वव्यापक अपने को व्याप्य जान के ईश्वर के समीप हम और हमारे समीप ईश्वर है ऐसा निश्चय योगाभ्यास से साक्षात् करना उपासना कहाती है, इसका फल ज्ञान की उन्नति आदि है।

५१—**'सगुणनिर्गुणस्तुतिप्रार्थनोपासना'** जो-जो गुण परमेश्वर में हैं उनसे युक्त और जो-जो गुण नहीं हैं उनसे पृथक् मान कर प्रशंसा करना **सगुणनिर्गुण स्तुति**। शुभ गुणों के ग्रहण की ईश्वर से इच्छा और दोष छुड़ाने के लिये परमात्मा का सहाय चाहना **सगुणनिर्गुण प्रार्थना** और सब गुणों से सहित सब दोषों से रहित परमेश्वर को मान कर अपने आत्मा को उसके और उसकी आज्ञा के अर्पण कर देना **सगुणनिर्गुणोपासना** कहाती है।

ये संक्षेप में स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं। इनकी विशेष व्याख्या इसी 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रकरण-प्रकरण में है तथा **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका** आदि ग्रन्थों में भी लिखी है अर्थात् जो-जो

बात सब के सामने माननीय है उसको मानता अर्थात् जैसे सत्य बोलना सब के सामने अच्छा, और मिथ्या बोलना बुरा है ऐसे सिद्धान्तों को स्वीकार करता हूँ ।

और जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न नहीं करता क्योंकि इन्हीं मत वालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फंसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सबको ऐक्यमत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त करा के सब से सबको सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है ।

thearyasamaj.org

महर्षि दयानन्द जी की जीवन यात्रा प्रश्नोत्तर में

लगभग ६० वर्ष जीए, २० वर्ष घर में रह कर पढाई व माता पिता की सेवा की, २० वर्ष तक तप किया, २० वर्ष तक प्रचार किया :-

१. **जन्म कब और कहाँ हुआ ?**

१२ फरवरी १८२५, फाल्गुण वदी दशमी विक्रमी संवत १८८१

२. **मृत्यु कब और कहां हुई ?**

दीपावली के दिन सांय ५ बजे, ३० अक्टूबर १८८३ अजमेर में (विनाय कोठी)

३. **कितनी आयु में देहांत हुआ ?** - ५९ वर्ष की आयु में

४. **प्रथम विषपान कब ?** - १८६७ में (आयु ५३ वर्ष)

५. **अन्तिम विषपान कब ?** - २९ सितम्बर १८८३

६. **अन्तिम विषपान के कितने दिनों बाद मृत्यु हुई ।**

३२ दिनों पश्चात्

७. **घर में रहते क्या पढ़ाई की ?**

संस्कृत व्याकरण व यजुर्वेद संहिता पाठ

८. **माता पिता का नाम, बचपन का नाम**

माता- यशोदा वाई / अमीना वेग,

thearyasamaj.org

पिता– कर्शन जी तिवारी, बचपन का नाम मूलशंकर व मूला

९. **कितने भाई वहिन थे ?**

पांच, दो छोटे भाई, दो छोटी बहिनें

१०. **दयानंद का स्थान**

भाई बहिनों में सब से बड़े

११. **बोध रात्रि** – १८३७ दयानंद की आयु १४ वर्ष

१२. **बहिन की मृत्यु** – १८४२ " " " १६ वर्ष

१३. **चाचा की मृत्यु** – १८४२ " " " १९ वर्ष

१४. **गृहत्याग** – १८४४, आयु २१ वर्ष, मृत्यु का भय, सच्चे शिव की जिज्ञासा, व तीव्र वैराग्य के कारण घर छोड़ा ।

१५. **योग गुरु** – ज्वालानंद पुरी, शिवानंद गिरि, घर छोड कर लगभग २० वर्ष तक योगाभ्यास किया ।

१६. **योगाभ्यास स्थल** – जंगलों व पहाड़ों की कन्दराओं में योगाभ्यास किया ।

१७. **संन्यास गुरु** – स्वामी पूर्णानंद जी से सन् १८५७ में ।

१८. **अज्ञात वास** – तीन वर्ष, इस बीच योगाभ्यास व क्रान्तिकारियों का निर्माण ।

१९. **गुरु विरजानंद से भेंट** – १८६०,३९ वर्ष की आयु में व्याकरण व वेद पढ़ने का सौभाग्य । आज अल्पायु में यह सुविधा कुछ गुरुकुलों में उपलब्ध है परन्तु दुर्भाग्य कि ऐसे गुरुकुलों का लाभ नहीं उठाया जाता ।

thearyasamaj.org

२०. **गुरु दक्षिणा** - १८६३ आयु ३९ वर्ष, लौंग के बदले वैदिक धर्म के प्रचार हेतु जीवन मांगा गया जो सहर्ष स्वीकार किया।

२१. **प्रचार में कितने वर्ष लगाए** - लगभग १९-२० वर्ष

२२. **पांखड खंडनी पताका कब और कहां गाड़ी ?**

१८६६ ई. हरिद्वार में (आयु ४१ वर्ष)

२३. **आर्य समाजों की स्थापना कहां कहां की ?**

बम्बई (१८७५), लाहौर (१८७७) मेरठ (१८७८), रूड़की (१८७८)

२४. **पं लेखराम व श्रद्धानंद से भेटं** - १८७९

२५. **पं गुरुदत्त विद्यार्थी से भेंट** - १८८३ मृत्यु समय में

२६. **महर्षि दयानंद के ५१ मन्तव्य पदार्थ /मान्यताएं :-**

५१ मन्तव्य/पदार्थ (ऋषिदयानंद) -

ईश्वर, वेद, धर्म, अधर्म, जीव, जीव-ईश्वर में भिन्नता-अभिन्नता, अनादि पदार्थ, प्रवाह से अनादि, सृष्टि, सृष्टि का प्रयोजन, सृष्टि सकर्तृक, बन्ध, मुक्ति, मुक्ति के साधन, अर्थ-अनर्थ, काम, वर्णाश्रम, राजा, प्रजा, न्यायकारी, देव-असुर-राक्षस- पिशाच, शिक्षा, पुराण, तीर्थ, पुरुषार्थ, मनुष्य, संस्कार, यज्ञ, आर्य-दस्यु, आर्य्यवर्त्त, आचार्य, शिष्य, गुरु, पुरोहित, उपाध्याय, शिष्टाचार, प्रमाण, आप्त, ५-परीक्षाएं, स्वतन्त्र-परतन्त्र, स्वर्ग, नरक, जन्म-मृत्यु, विवाह, नियोग, स्तुति, प्रार्थना, उपासना, सगुण निर्गुण, स्तुति प्रार्थनोपासना।

२७. **महर्षि दयानंद के सौ रत्न** (आर्योदेश्यरत्नमाला से)

ईश्वर आदि १०० तत्वों के लक्षण :- ईश्वर, धर्म, अधर्म,

पुण्य, पाप, सत्यभाषण, मिथ्याभाषण, विश्वास, अविश्वास, परलोक, अपरलोक, जन्म, मरण, स्वर्ग, नरक, विद्या, अविद्या, सत्यपुरुष, तीर्थ, स्तुति, स्तुति का फल, निन्दा, प्रार्थना, प्रार्थना का फल, उपासना, निर्गुणोपासना, सगुणोपासना मुक्ति, मुक्ति के साधन, कर्त्ता, कारण, उपादान कारण, निमित्त कारण, साधारण कारण, कार्य, सृष्टि, जाति, मनुष्य, आश्चर्य, आर्यवर्त्तदेश, दस्यु, वर्ण, वर्ण के भेद, आश्रम, आश्रम के भेद, यज्ञ, कर्म, क्रियमाण, सञ्चित, प्रारब्ध, अनादि पदार्थ, प्रवाह से अनादि पदार्थ, अनादि का स्वरूप, पुरुषार्थ, पुरुषार्थ के भेद, परोपकार, शिष्टाचार, सदाचार, विद्यापुस्तक, आचार्य, गुरु, अतिथि, पञ्चायतन पूजा, अपूजा, जड, चेतन, भावना, अभावना, पण्डित, मूर्ख, ज्येष्ठनिष्ठ व्यवहार, सर्वहित, चोरी त्याग, व्यभिचार त्याग, जीव का स्वरूप, स्वभाव, प्रलय, मायावी, आप्त, परीक्षा, आठप्रमाण, लक्षण, प्रमेय, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव, शास्त्र, वेद, पुराण, उपवेद, वेदाङ्ग, उपाङ्ग, नमस्ते ।

२८. महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज के दस नियम

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है ।

२. ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार आनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है ।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ।

५. सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये ।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारिरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए ।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए ।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

२९. महर्षि दयानंद के उपनियम (आर्य समाज की सदस्ता के लिए)

१. वेद को जानना, मानना व प्रचार करना ।

२. प्रातः सायं सन्ध्या, हवन करना ।

३. अपनी आय का शतांश मासिक चन्दे के रूप में देना ।

४. मांस, अंडे, बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि को छोड़ना-छुड़वाना ।

thearyasamaj.org

५. मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध, फलित ज्योतिष आदि को छोड़ना-छुड़वाना।

६. अपने नाम के साथ जाति सूचक चिन्ह हटाकर आर्य शब्द का प्रयोग करना।

३०. महर्षि दयानंद के ग्रन्थ - ३२

आर्याभिविनय-१९३२; सत्यार्थप्रकाश-१९३२; काशी शास्त्रार्थ-१९२६; सत्यधर्म विचार-१९३७, आर्योद्देश्य-रत्नमाला-१९३४; संस्कार विधि-१९३२; ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका-१९३३; ऋग्वेद भाष्य-१९३४-४०; यजुर्वेद भाष्य-१९३४-३९; यजुर्वेद भाषा भाष्य-१९३४-३९; व्यवहार भानु १९३६; वेद विरूद्ध मत खण्डन-१९३१; नारायण स्वामी मत खण्डन-१९३१; भ्रमोच्छेदन-१९३७; भ्रान्तिनिवारण-१९३४; पंचमहायज्ञ विधि-१९३४; गोकरूणा निधि-१९३७; वेदाङ्गप्रकाश-१९३६-३९; विवाह पद्धति; संस्कृत वाक्य प्रवोध-१९३६; वेदभाष्य का नमूना-१९३२-३३; अष्टाध्यायी भाष्य-१९८४; प्रतिमा पूजन विचार-१९३०; वेदान्त भ्रान्ति निवारण-१९३१; स्वमन्तव्याप्रकाश-१९३९

३१. महर्षि दयानंद मे मुख्य हस्त लिखित ग्रन्थ

१. ऋग्वेद भाष्य (सात-मण्डल), २. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, ३. सत्यार्थ प्रकाश, ४. यजुर्वेद भाष्य (सम्पूर्ण), ५. संस्कार विधि, ६. व्यवहार भानु, ७. गोकरुणानिधि, ८. आर्यभिविनय, ९. पंचमहायज्ञ- विधि, १०. प्रतिमा पूजन विचार

thearyasamaj.org

३२. **मुख्य उद्घोष व प्रिय मन्त्र–कृण्वन्तो विश्वमार्यम्, मन्त्र–ओ३म् विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव ।**

यद् भद्रं तन्न आसुव ॥

३३. **प्रसिद्ध प्रवचन** – पूना के १५ प्रवचन (मुख विषय – ईश्वर सिद्धि, धर्माधर्म, वेद, जन्म, यज्ञ, संस्कार, इतिहास, नित्य कर्म, मुक्ति, जीवन चरित्र)

३४. **ब्रह्मचर्य के चमत्कार –**

- एक हाथ से चार घोड़ों से युक्त बघ्घी को रोकना ।
- पहलवानों के आक्रमण करने पर उन्हें गर्दन से दबोचकर नदी में गोते लगाना ।
- कर्णवास में राव कर्ण सिंह की तलवार के दो टुकड़े करना ।
- हलाहल विष पीने पर भी ३२ दिन तक प्राण रोके रखना।

३५. **योगबल के चमत्कार –**

- पास आने पर उन्मत सांड का शांत हो जाना ।
- कानपुर में समाधिस्थ देख मगरमच्छ का पास से गुजर जाना ।
- एक कपटी ब्राह्मण विषैले लड्डू ला रहा है इसे पूर्व ही बताना ।
- किसी ने योग विद्या देने का अनुरोध किया तो योगबल से पता लगाया कि यह व्यक्ति भांग पीता है कहा 'भांग और पी ले' ।

◈ दूसरे ऐसे ही जिज्ञासु को कहा 'एक विवाह और कर लें'।

३६. **प्रसिद्ध शास्त्रार्थ :-**

काशी व बरेली/काशी में काशी नरेश व २७ ब्राह्मण एक ओर दयानंद दूसरी ओर ।

३७. **प्रसिद्ध स्टीक उत्तर :-** विशुद्धानंद शास्त्री व बाल शास्त्री द्वारा वेदान्त सूत्र का अर्थ पूछने पर-आप विद्वान या अविद्वान? दवात में परमात्मा है तो मूर्ति में क्यों नहीं ? मूर्तिपूजा खण्डन छोड़ो तो महन्त की गद्दी लो, अंग्रेजों के राज्य में कुरान, बाईवल का खण्डन न करें । (उत्तर - उपदेश मंजरी में देखें)

३८. **मुख्य उपकार** – संस्कार व संध्या हवन, वेदभाष्य, नारी जाति व अछूत उद्धार, स्वदेश प्रेम व आर्य भाषा का प्रचार।

३९. **मुख्य शिष्य** – स्वामी श्रद्धानंद, पं लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, श्याम जी कृष्ण वर्मा ।

४०. **मुख्य शिक्षाएं** – त्रैतवाद, अष्टांग योग, ५ महायज्ञ व १६ संस्कार, आश्रम व वर्ण व्यवस्था । इन चार स्तम्भों को पुनः खड़ा करना, गौरक्षा-एकगाय एक पीढी में ४,७५६०० मनुष्यों का पालन करती है का सन्देश, वेद रक्षा, मतमतान्तरों का इतिहास, यम नियमों का पालन, मुक्ति के उपाय, सन्तान निर्माण, स्वदेशी राज्य सर्वोत्तम, राजधर्म ।

४१. **समकालीन** – स्वामी विवेकानंद, रामकृष्ण परमहंस, रविन्द्रनाथ टैगोर, देवेन्द्रनाथ टैगोर, झांसी की रानी, श्याम जी कृष्ण वर्मा, महात्मागांधी, नेहरु, सुभाष, तिलक, लाला लाजपतराय, राजा राम मोहन राय ।

thearyasamaj.org

४२. **स्वामी दयानन्द व विवेकानंद में अन्तर** - जन्म १८२४,१८६२, ब्राह्मण/कायस्थ, जन्म स्थान टंकरा/कलकत्ता, घरेलू पढ़ाई/कालिज पढ़ाई, गुरु विरजानंद/रामकृष्ण परमहंस, त्रैती/अद्वैती, वेद व्याकरण के विद्वान/अविद्वान, आर्यसमाज स्थापना/रामकृष्ण मिशन स्थापना, मृत्यु १८८३/१९०२, आयु ५९/३९, मूर्ति पूजा-मांस भक्षण-बाल विवाह-विधवा विवाह-बाईबल-कुरान वेद उपनिषद सम्बन्धी विचार स्पष्ट/अस्पष्ट, प्रचार क्षेत्र देश/विदेश (शिकागो)

४३. **भ्रान्तियां** - समाधि व मोक्ष सुख छोड़ा, तेरी इच्छा पूर्ण हो का गलत अर्थ, मोहत्याग कर माता पिता को दुःख दिया, मात्र पण्डित या सुधारक ।

४४. **गाय व योगीराज कृष्ण के प्रति उद्‌गार** - गाय एक पीढ़ी में ४,७५६०० मनुष्यों का पालन करती है, कृष्ण का जीवन अति उत्तम, उसने जन्म से लेकर मरण तक कोई अनुचित कार्य नहीं किया ।

४५. **स्वदेशीराज्य प्रति विचार** - विदेशी राज्य कितना भी उत्तम हो परन्तु स्वदेशी के तुल्य नहीं हो सकता ।

४६. **आर्य हिन्दु में भेद पर विचार** - मनुष्य जाति के दो ही भेद-आर्य व अनार्य, ब्राह्मणों द्वारा संकल्प पाठ में आर्य वर्त देशे भारतखण्डे का पाठ, रामायण-महाभारत के पात्रों को आर्य शब्द से सम्बोधन, गुरू गोविन्द सिंह ने कहा था 'गर तुसीं हो सच्चे आर्य सीस कटा दो धर्म के कार्य, हिन्दू शब्द के अर्थ कमीन-गुलाम-काला काफिर मूर्ति पूजक-अन्धविश्वासी जब कि आर्य शब्द के अर्थ-आर्यावर्त का

निवासी, आर्यधर्म अर्थात वेद को मानने वाला, आर्य वनने वनाने का संकल्प करने वाला, आर्य समाज का सदस्य, प्रतिदिन संध्या हवन सेवा स्वाध्याय करने वाला, पाखडों को दूर करने वाला ।

४७. दयानंद के प्रति कुछ महापुरुषों के उद्‌गार

i) **अपनी धुन के पक्के :-** स्वामी जी ने बाल्यकाल से लेकर मृत्युपर्यन्त अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिये प्राणों की भी परवाह न कर जी जान से प्रयत्न किया । बीच में बाधक बनने वाले अपने सुख-दुःख तथा प्राणों के संकट पर भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया । पहले ज्ञान की प्राप्ति का उद्देश्य और पीछे सत्यधर्म का प्रचार तथा गुरु के आदेश की पूर्ति के लिये उन्होंने इसी तरह से कार्य किया ।

ii) **समग्र जीवन संकटमय :-** स्वामी जी सारे जीवन में मुसीबतों को ही गले लगाते रहे । सिवाय घर छोड़ने से पहले के २० वर्षों के । उनका आगे का सारा जीवन संकटों से ही भरा रहा। ज्ञान प्राप्ति से पहले १४ वर्ष तक जंगलों में भटके और ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् सारे जीवन सहर्ष प्राणों को संकट में डालकर प्रचार के कार्य में जुटे रहे । वे चाहते तो गुरु की इच्छा को पूरा करने से मना कर सकते थे, या उसे पूरा करने के लिये थोड़ा सा कार्य कर देते और फिर कहीं अपना मठ बनाकर सुख से बैठ जाते, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । देश और जाति की भलाई के लिये सहर्ष मृत्यु को स्वीकार कर लिया । यह कितनी विडम्बना की बात है कि जो हिन्दू जाति अपनी धार्मिक सहिष्णुता पर गर्व करती है, उसी के

सदस्यों ने उन्हें हताहत करने और जान से मार देने की लिये लगातार प्रयत्न किये । किन्तु जो मुसलमान और ईसाई ध ार्मिक असहिष्णुता के लिये प्रसिद्ध हैं, उन्होंने उनके साथ वैसा व्यवहार नहीं किया, जबकि उनका भी उनके सामने ही खंडन करते हुए स्वामी जी ने कोई हिचकिचाहट नहीं दिखाई। इसी प्रकार जिस नारी जाति के उत्थान के लिये उन्होंने आवाज उठाई और प्रयत्न किये उसी नारी जाति की एक सदस्या ने उन्हें विष पिलाकर उनकी जान ले ली । उनके जैसा कष्ट महाभारत के पश्चात् जन्मे किसी अन्य महापुरुष ने नहीं झेला ।

iii) **लोकैष्णा से रहित :-** प्रायः महापुरुष जनता में बढ़ती हुई अपनी प्रसिद्धि से लाभ उठाते हैं किन्तु यह स्वामी दयानन्द जी की विशेषता थी कि उन्होंने जनता से अपने सम्भाल की कभी इच्छा नहीं की । उन्होंने आर्य समाज आदि संस्थाएं स्थापित कीं और पुस्तकों की रचना की, किसी में भी अपने आप को नहीं जोड़ा, जबकि हम देखते हैं कि अनेक महापुरुषों ने अपने जीवन काल में ही अपने नाम से संस्थाएं खोलीं और अपने नाम के आगे श्री, परमहंस, १००८ आदि सम्मान सूचक उपाधियाँ लगायीं। स्वामी जी ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया। अपने व्याखानों और पुस्तकों में सर्वत्र उन्होंने यही प्रकट किया कि जो कुछ मैं कर रहा हूँ, अपनी बुद्धि के बल पर नहीं अपितु वेदादि शास्त्रों के आधार पर कर रहा हूँ ।

iv) **अन्धश्रद्धा के विरोधी :-** स्वामी जी अन्धश्रद्धा के घोर विरोधी थे और समझते थे कि देश के पतन में अन्धश्रद्धा ही

thearyasamaj.org

मुख्य कारण है। इसलिये उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि पहले बुद्धि से समझो, फिर उसे स्वीकार करो । मेरी बात भी तभी मानो जब तुम्हारी बुद्धि उसे स्वीकार कर ले । केवल मेरे कहने मात्र से उस पर विश्वास मत करो । उदाहरण के लिये आर्य समाज के प्रसिद्ध सेनानी शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी अपनी युवावस्था में जब स्वामी जी से मिले तब स्वामी ने अपनी युक्तियों से उनकी सारी शंकाओं को दूर कर दिया । पर जब श्री मुंशीराम (श्रद्धानन्द जी का पूर्व नाम) ने यह कहा कि शंकाओं का समाधान होने पर भी मेरा दिल आपकी बात पर विश्वास नहीं कर रहा है । तब स्वामी जी ने उन्हें यही उत्तर दिया कि बुद्धि की सन्तुष्टि मैंने कर दी । दिल में निश्चय तभी होगा जब परमात्मा की तुम पर कृपा होगी । मेरी बात तुम तभी मानना जब दिल में पूरा विश्वास हो जाये। बिना विश्वास हुए मत मानना ।

v) **मन, वाणी और कर्म का मेल :–** स्वामी जी में एक विशेष बात यह थी कि जैसा वे मन में सोचते थे, वैसा ही वाणी से बोलते थे और जीवन में भी उसी के अनुसार कार्य करते थे। यह कहिये कि उन्होंने सत्य को पूरी तरह से अपने जीवन में उतारा हुआ था । अन्दर कुछ और बाहर कुछ वाली बात उनमें बिल्कुल नहीं थी । उदाहरण के लिये वे जैसे उत्तम स्वास्थ्य, ब्रह्मचर्य का पालन और योग के लिये कहते थे। वैसे ही उन्होंने इन गुणों को अपने जीवन में भी उतारा हुआ था। इन गुणों की वे साक्षात् जीती-जागती मूर्ति थे । ब्रह्मचर्य क पालन से इनका स्वास्थ्य इनता उत्तम था कि शारीरिक

शक्ति से उन्होंने बड़े-बड़े पहलवानों के भी छक्के छुड़ा दिये थे ।

vi) **महान् योगी :-** स्वामी दयानन्द जी अपने समय के महान् योगी थे । यद्यपि अपने जीवन चरित्र में उन्होंने स्वयं यह माना है कि मैं उत्तम कोटि का योगी नहीं हूँ, केवल मध्यम कोटि का हूँ, पर फिर भी योगी महापुरूषों में शंकराचार्य के पश्चात् उन्हीं का नाम लेना चाहिए । जनता में प्रचार कार्य करते हुए उन्हें योगाभ्यास का समय नहीं मिल पाता था पर फिर भी जब मन में आता था अपनी कोठरी के किवाड़ बन्दकर तथा सेवक को विघ्न न डालने का आदेश देकर १८ से लेकर २४ घण्टे की लगातार समाधि पर बैठ जाया करते थे । यह उनकी योग की शक्ति का ही प्रभाव था कि लगातार प्रचार कार्य में व्यस्त रहने तथा भ्रमण करते रहने पर भी उन्होंने २० वर्ष की अल्पावधि में ३५ ग्रन्थों की रचना कर दी । बिना योगाभ्यास के सामान्य व्यक्ति इतना कार्य नहीं कर सकता।

vii) **हिन्दी भाषा की सेवा :-** स्वामी जी का नाम हिन्दी भाषा की सेवा के लिए भी प्रसिद्ध है । उनकी स्वयं की मातृभाषा गुजराती थी, प्रचार कार्य आरम्भ के दिनों में उन्होंने संस्कृत में ही किया । किन्तु उसके बाद जब उन्होंने हिन्दी का प्रयोग आरम्भ किया तो पहले स्वयं हिन्दी का अभ्यास किया, फिर अपनी सारी पुस्तकें हिन्दी में लिखीं । संस्कृत व्याकरण जैसा नीरस और जटिल विषय भी उन्होंने वेदांग प्रकाश नाम के व्याकरण ग्रन्थ में, जिसके १५ भाग हैं, हिन्दी में सरलता के साथ उतार कर रख दिया ।

thearyasamaj.org

viii) **स्वतन्त्रता के प्रथम उद्घोषक :-** जब प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम अंग्रेजों के द्वारा कुचल दिया गया, तब उसमें भाग लेने वालों को उन्होंने ढूंढ-ढूंढ कर पकड़ा, उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ दीं और जनता में अपना आतंक फैलाने के लिये उन्हें सरे आम फाँसी पर लटका दिया । स्वामी जी ने इन सभी घटनाओं को अपनी आँखों से देखा था । उस समय जनता में अंग्रेजों का इतना डर छा गया था कि कोई भी स्वाधीनता का जिक्र नहीं कर सकता था, किन्तु स्वामी जी ने बिना उनके आतंक से आतंकित हुए निर्भयता के साथ सत्यार्थ प्रकाश में भारत की पराधीनता और उसे पराधीन करने वालों की निन्दा तथा स्वाधीनता के महत्व का गान किया । जैसे उदाहरण के लिये देखिये -

(अ) **कोई कितना भी कहे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है । (अष्टम समुल्लास)**

(ब) **जबसे विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं को मारने वाले महापापी राज्याधिकारी हुए हैं, तबसे क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है । (दशम् समुल्लास)**

(स) **अपने देश के बने जूते को कार्यालय और कचहरी में जाने देते हैं और इस देशी जूते को नहीं । इतने से ही समझ लो कि अपने देश के बने जूते का भी कितना मान, प्रतिष्ठा करते हैं । उतना भी अन्यदेशस्थ मनुष्यों का नहीं करते ।**

४८. **दयानंद के अनुयायियों के कार्य** - ६००० आर्यसमाजें, ३०० आर्य विद्यालय ३०० गुरुकुल, ६०० डी.ए.वी. स्कूल तीन विश्वविद्यालय, अनेक अनाथालय व वानप्रस्थाश्रम (देहरादून,

रोहतक, रोजड़ आदि) पतञ्जलि योग पीठ हरिद्वार, गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, आयुर्वेदिक कॉलिज, अनेक शोधकेन्द्र, अनेक आर्यवीर दल, आर्य वीरांगना दल, दयानन्द मैडीकल कॉलिज, लुधियाना ।

४९. महर्षि दयानन्द के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रत्येक समुल्लास का विषय व सार :-

i) ओ३म् ईश्वर का सर्वोत्तम नाम, शेष नाम गौणिक, गुणों के आधार पर अनन्त नाम । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, महादेव, मंगल, बुध, शुक्र, शनि, राहू, केतु, देवी, माता-पिता आदि सब नाम ईश्वर के ही । उन नामों से मूर्तियां बनाना व्यर्थ । मंगलाचरण व्यर्थ । प्रकरण देखकर शब्दों के अर्थ लें । हरि, राम, कृष्ण आदि नाम वेदादि शास्त्रों में कहीं नहीं है ।

ii) माता, पिता व आचार्य धार्मिक विद्वान हों तभी सन्तान उत्तम होती है । भूत-प्रेत, जादू-टोना, यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र सब व्यर्थ । गणित ज्योतिष ठीक, फलित ज्योतिष ठग विद्या ।

iii) आर्ष पाठ विधि सर्वोत्तम, अनार्ष ग्रन्थों का त्याग व उनके नाम, ब्रह्मचर्य की महिमा, गायत्री उपदेश ।

iv) विवाह से पूर्व व पश्चात् सावधानियां, पञ्चमहायज्ञ, सोलह संस्कार, नियोग, गृहस्थ धर्म

v) ५०-७५ वर्ष तक एकान्त में रह कर साधना, स्वाध्याय अर्थात् वानप्रस्थाश्रम धर्म, ७५-१०० वर्ष तक परिव्राजक होकर वेदप्रचार, साधना, स्वाध्याय, धर्म के दस लक्षणों का पालन ।

thearyasamaj.org

vi) राजधर्म-राजा, राजकर्मचारी व प्रजा के कर्त्तव्य, दण्ड व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, सैनिक सब वेदानुकूल हों, धार्मिक हों ।

vii) ईश्वर की सिद्धि व उसके गुण, कर्म, स्वभाव, वेद उत्पत्ति, वेदों का महत्व, शाखाएं आदि ।

viii) सृष्टि उत्पत्ति, स्थिति प्रलय, त्रैतवाद, तीन अनादि तत्व, मनुष्य सृष्टि कब, कहां, कैसे ?

ix) मुक्ति की परिभाषा, साधन, शंकाएं, समय, पुनर्जन्म सिद्धि, पाप-पुण्य की गति ।

x) आचार-अनाचार, भक्ष्य-अभक्ष्य, गाय के उपकार, सखरी-नखरी, छुआछूत ।

xi) आर्य्यवर्त (भारत) देश का प्राचीन गौरव, मतमतान्तरों की उत्पत्ति, मूर्तिपूजा व चमत्कारों की पोल, पुराणों की गप्पें, आर्य राजा व उनका काल ।

xii) जैन बौद्ध मत समीक्षा, जैन ग्रन्थों की गप्पें ।

xiii) ईसाई मत समीक्षा, बाईबल की असम्भव बातें ।

xiv) मुस्लिम मत समीक्षा, कुरान की असम्भव बातें ।

विस्तृत जानकारी के लिए मूल सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें एवं हमारी अन्य पुस्तकों का अध्ययन करें ।

नोट — इन सभी विषयों की संक्षिप्त चर्चा इस पुस्तक में कर आए हैं ।

५०. **महर्षि दयानन्द के राजधर्म पर विचार** – विद्यार्यसभा, धर्मार्यसभा व राज्यार्यसभा का गठन हो, सब विद्वान मिलकर

thearyasamaj.org

राजा का चुनाव करें, राजा और मन्त्री वेदों के विद्वान हों, जितेन्दिय हों, जौक, वछडा व भ्रमर की नाईं थोड़ा-थोड़ा कर लें, सेना दुर्ग व अस्त्र-शस्त्र से युक्त हों, पकड़े हुए शत्रुओं के साथ अच्छा व्यवहार करें, युद्ध में छल-छिद्र भी आवश्यक है; राजा सैनिकों को प्रसन्न रखे; ऋण, धरोहर, क्रय-विक्रय, वेतन, चोरी, बलात्कार आदि अट्ठारह बातों में प्रजावर्ग में विवाद होता है। न्याय सभा द्वारा ठीक-ठीक निर्णय हो, धार्मिक विद्वानों की ही साक्षी हो, जिस अपराध में साधारण मनुष्य को एक पैसा दण्ड हो उसी अपराध में राजा को १००० गुणा, मन्त्री को ८०० गुणा दण्ड हो, दण्ड कड़े हों ताकि लोग बुरे कार्य करने से बचे; बाल विवाह व अन्ध विश्वासों को रोकें, बहु-विवाह बंद करें, नदी समुद्रों पर कर लें। महर्षि दयानन्द सच्चे राजनैतिक थे और विदेशी राज्य, वस्तुओं व भाषा प्रयोग के विरूद्ध थे।

thearyasamaj.org